शोध सम्बन्धी पुस्तकें

1 चन्द्रभूषण मिश्र : हिन्दी कहानी के विकास में बिहार का योगदान ... 110·00

2 ताराकान्त मिश्र : मैथिली लोक साहित्य का अध्ययन ... 175·00

3 ब्रज मोहन पाण्डेय 'नलिन' : व्युत्पति विज्ञान : सिद्धान्त एवं विनियोग ... 80·00

4 राम शोभित प्रसाद सिंह : कहानी समालोचना संदर्भ ... 70·00

5 राम शोभित प्रसाद सिंह : नाटक समालोचना संदर्भ ... 60·00

6 राम शोभित प्रसाद सिंह : उपन्यास समालोचना संदर्भ ... 65·00

7 राम शोभित प्रसाद सिंह : काव्य समालोचना संदर्भ खण्ड 1 एवं 2 ... 250·00

8 राम नारायण प्रसाद सिंह : कबीर के काव्यों पर समसामायिक परिस्थितियों का प्रभाव ... प्रेस में

जानकी प्रकाशन

अशोक राजपथ, चौहट्टा

पटना, ८००००४

औरंगज़ेब

औरंगज़ेब



चतुर्भुज

Scanned by CamScanner

मुगल शासकों में औरंगजेब जैसा महत्वाकांक्षी कोई नहीं हुआ। उसका साम्राज्य अकबर के साम्राज्य से भी आकार में बड़ा था यद्यपि साम्राज्य में चारो तरफ अशान्ति थी। लेकिन मरते दम तक उसने साम्राज्य को टूटने न दिया। उसकी कर्मठता, कूटनीति, प्रवीणता, प्रशासनिक दक्षता और अध्यवसाय का कोई मुकाबला न था। मुगल शासकों में उसके जैसा विद्वान् कोई नहीं हुआ। उसका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सादा और पवित्र था। उसने कभी शराब नहीं पी, न भोगलिप्सा का शिकार हुआ। पूरी आधी शताब्दी तक वह हिन्दुस्तान पर हकूमत करता रहा और फ़ौजी खेमे में ही, राजधानी से दूर, दक्षिण भारत में, उसकी मृत्यु हुई।

इन तमाम सद्गुणों के होते हुए भी उसमें ऐसी खामियाँ थीं जिन्होंने सल्तनते मुगलिया की जड़ें हिला कर रख दीं। वह अपने बेटों पर भी विश्वास नहीं करता था। शत्रुओं के लिए वह काल था।

इस लघु पुस्तक के पहले भाग में औरंगजेब के शासनकाल की सभी प्रमुख घटनाओं की जानकारी सरल भाषा में दी गयी है। दूसरे भाग में वेनिस के यात्री निकोलाओ मनूची-लिखित अद्भुत पुस्तक 'स्टोरिया डो मोगोर' पर आधारित कुछ ऐसे लेख हैं जिनमें वर्णित घटनायें चौकानेवाली हैं। लेखक ने अपनी शैली में इन्हें सरस बनायी हैं। औरंगजेब के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करनेवालों के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी। ऐसा विश्वास है।

25·00

Scanned by CamScanner

औरंगज़ेब

लेखक

चतुर्भुज

जानकी प्रकाशन

पटना : नई दिल्ली

Scanned by CamScanner

पृ० सं०

21. औरंगज़ेब के अन्तिम दिन — 50
22. औरंगज़ेब का परिवार — 51

दूसरा भाग

1. पिता पर अत्याचार — 57
2. बड़े भाई की हत्या — 63
3. रक्त की भेंट — 69
4. छोटे भाई से छल — 76
5. अराकान का शहीद — 82
6. बेटों पर अविश्वास — 88
7. गुलाब और काँटा — 94
8. अन्तिम वसीयत — 100

लेखक की ओर से

ऐतिहासिक नाटक लिखने के क्रम में मुझे बराबर इतिहास की पुस्तकों की खोज करनी पड़ी। अनेक पुस्तकालयों के चक्कर लगाने पड़े, जीर्ण-शीर्ण कीड़े खाये ग्रन्थों से लेकर आज के लिखे शोध ग्रन्थों तक को पढ़ना पड़ा। ऐतिहासिक मसालों का नाटकों में उपयोग करने के बाद बराबर ऐसा अनुभव हुआ कि बची हुई सामग्री का अन्यत्र उपयोग करना उचित होगा ताकि इसका लाभ दूसरे लोग भी उठा सकें। परिणामस्वरूप वैसी सामग्री को आधार मान कर मैंने अनेक लेख, कहानियाँ आदि लिखीं। संग्रह का प्रकाशन पुस्तकाकार में भी हुआ।

इसी खोज के सन्दर्भ में एक वृहत् और पुरानी पुस्तक मिली—स्टोरिया डो मोगोर। वेनिस का यात्री निकालाओ मनूची शाहजहाँ के शासनकाल में भारत आया था। इस अद्‌भुत पुस्तक में उसका यात्रावृत्तान्त ही नहीं है, बल्कि मुगलों का विस्तृत इतिहास भी है। शाहजहाँ और औरंजेगव के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का सजीव वर्णन भी है। मनूची मूलरूप से चिकित्सक था, लेकिन तोपखाने की बारीकी भी वह जानता था। जब दक्षिण में शिवाजी ने मुगल सेनापति शाइस्ता खाँ को पराजित किया तो मुगलसम्राट् औरंगज़ेब उस 'पहाड़ी चूहे' के उत्पात से चिन्तित हो उठा। विजय जिनके आगे-आगे चलती थी, उन वृद्ध राजा जयसिंह को शिवाजी के दमन के लिए नियुक्त किया गया। राजा जयसिंह जानते थे कि विदेशियों द्वारा परिचालित शिवाजी का तोपखाना सामरिक दृष्टि से उत्कृष्ट है। उन्हें भी किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश थी जो शिवाजी के तोपखाने को ध्वस्त कर सके। उन्होंने इस जटिल उत्तरदायित्व के लिए मनूची को साथ में लिया। उनका चुनाव सही था। मनूची के तोपखाने की मार ने शिवाजी के तोपखाने को केवल शान्त ही नहीं किया, बल्कि उन्हें आत्मसमर्पण के लिए मजबूर भी

Scanned by CamScanner

कर दिया। राजा जयसिंह के शिविर में बाद में, मनूची ने शिवाजी के दर्शन भी किये।

मनूची-वर्णित कुछ अनजाने ऐतिहासिक पहलू को लेकर मैंने कई लेख लिखे जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुये। उन लेखों का संग्रह मैं पुस्तक के रूप में प्रकाशित कराना चाहता था। फिर विचार आया कि चूँकि उन लेखों का मुख्य पात्र औरंगज़ेब है, और उसकी संक्षिप्त जीवनी के बिना पुस्तक अधूरी लगेगी, इसलिए उसकी जीवनी भी तैयार करनी पड़ी। सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० जदुनाथ सरकार की प्रमुख पुस्तक है—हिस्ट्री आफ औरंगज़ेब। उस पुस्तक को आधार मानकर तथा अन्य उपलब्ध सामग्री का संचयन कर प्रस्तुत पुस्तक का पहला भाग लिखा गया। दूसरे भाग में मनूची वर्णित सन्दर्भों पर आधारित लेख हैं। मैं इन सभी आदरणीय लेखकों का कृतज्ञ हूँ।

श्री सुरेन्द्र झा ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी, साथ ही प्रेसकापी तैयार करने में बहुमूल्य योगदान दिया। जानकी प्रकाशन, पटना के अध्यक्ष श्री नन्दकिशोर सिंह ने पुस्तक के प्रकाशन का भार लेकर मेरी बड़ी सहायता की। पत्नी मनोरमा देवी और पुत्र अशोक प्रियदर्शी तथा कुमार शान्तरक्षित ने पुस्तक लिखने की सारी सुविधा जुटायी। मैं इन सबका कृतज्ञ हूँ।

30 अप्रैल 1986

चतुर्भुज
106, श्रीकृष्ण नगर,
पटना-800001 (बिहार)

भूमिका

मुगल शासकों में औरंगज़ेब (आलमगीर) एकमात्र ऐसा शासक हुआ जिसका सम्पूर्ण जीवन संघर्ष करते बीता, जीवन का पूर्वार्द्ध दिल्ली की गद्दी पाने के लिए और उत्तरार्द्ध विशाल मुगल साम्राज्य में अमनचैन कायम करने की कोशिश में। मुगल शासकों में औरंगज़ेब जैसा महत्वाकांक्षी कोई न हुआ। उसका साम्राज्य अकबर के साम्राज्य से भी आकार में बड़ा था यद्यपि साम्राज्य में चारो तरफ अशान्ति थी। उसके विरोधी सर उठा रहे थे। लेकिन मरते दम तक औरंगज़ेब ने साम्राज्य को टूटने न दिया। उसकी कर्मठता, कूटनीति, प्रवीणता, प्रशासनिक दक्षता और अध्यवसाय का कोई मुकाबला न था। कुरानपाक का तो यह विशेषज्ञ था ही, फारसी, तुर्की, अरबी भाषाओं का भी वह पंडित था। मुगल शासकों में उस जैसा विद्वान कोई न हुआ। इतने बड़े साम्राज्य का स्वामी होने के बावजूद उसका व्यक्तिगत जीवन अत्यन्त सादा और पवित्र था, अपने पूर्वजों के एकदम विपरीत। उसने कभी शराब नहीं पी और न भोगलिप्सा का शिकार हुआ। उसका शासनकाल अकबर के शासनकाल से भी लम्बा था। पूरी आधी शताब्दी तक वह हिन्दुस्तान पर हुकूमत करता रहा और फौजी खेमे में ही, राजधानी से दूर, उसकी मृत्यु हुई।

लेकिन इन तमाम सद्गुणों के होते हुए भी उसमें कुछ ऐसी खामियाँ थीं जिन्होंने सल्तनतेमुगलिया की जड़ें हिलाकर रख दीं। वैसे भी मुगल साम्राज्य का पतन निश्चित था क्योंकि पूरे मुल्क में असंतोष की आग फैल चुकी थी। औरंगज़ेब चाहता तो निरंतर बढ़ते असन्तोष को कम कर सकता था, लेकिन उसने असन्तोष को बढ़ावा देकर साम्राज्य को कमजोर करने में योगदान ही दिया। उसकी धार्मिक कट्टरता, असहिष्णुता, साम्प्रदायिक

Scanned by CamScanner

पक्षपात, और हिन्दू आबादी जिसे वह काफिरों की जमात कहता था, की खिलाफत ने आग में घी का काम किया। उसे अपने बेटों पर भी विश्वास न था। उन्हें हमेशा वह दिल्ली से दूर ही रखता था क्योंकि उसे इस बात का डर रहता था कि वे उसे मारकर उसकी गद्दी न हथिया लें। वह नहीं चाहता था कि उसके बेटे गद्दी पाने के लिए उसकी खानदानी परम्परा की पुनरावृत्ति करें। लेकिन उसके लाख न चाहने पर भी पुनरावृत्ति होकर ही रही। औरंगज़ेब ने छल और बल का प्रयोग कर अपने बड़े भाइयों-दारा और शुजा-का अंत किया था और छोटे भाई मुराद का सफाया कर दिल्ली का तख्त हासिल किया था। अपने इन कुकृत्यों का फल भी उसे देखना पड़ा। उसका बड़ा बेटा मुहम्मद सुल्तान भरी जवानी में, अपने बाप की आँखों के सामने ही, खुदा का प्यारा हो गया। दूसरा बेटा अकबर भी उसके जीवन-काल में ही मर गया। दो पोते भी न रहे। और "जिंदा पीर" का फतवा धारण करने वाला आलमगीर अपने किये पर पछताता हुआ दुनिया से रवाना हो गया।

औरंगज़ेब शाहजहाँ और मुमताज महल की छठी संतान था। जब उसका दादा जहाँगीर, मलिक अम्बर के विद्रोह को दबा कर अहमदनगर से लौट रहा था तो रास्ते में दोहद में 24 अक्टूबर 1618 को औरंगज़ेब का जन्म हुआ। शाहजहाँ तब सिर्फ खुर्रम था। उसने अपने पिता जहाँगीर के खिलाफ विद्रोह किया था, और विफल होकर इधर-उधर भाग रहा था। अंततः उसे बादशाह के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ा और अपने बेटों-दारा और औरंगज़ेब को जामिन रखना पड़ा। लेकिन कुछ ही दिनों के बाद जहाँगीर मर गया। शाहजहाँ तख्तेनशीं हुआ और औरंगज़ेब को मुक्ति मिली। शाहजहाँ ने औरंगज़ेब की शिक्षा-दीक्षा का उत्तम प्रबन्ध किया। मक्का, मदीना और बल्ख के विद्वान उसके शिक्षक नियुक्त किये गये। इन विद्वानों से उसने इस्लाम धर्म, न्याय और शासन-व्यवस्था की शिक्षा प्राप्त की। उसने पवित्र कुरान को कंठस्थ कर लिया था। वह अरबी भाषा में कुरान

की नकल किया करता था। इसके दो प्रमुख उद्देश्य थे। एक तो इससे धर्म-साधना होती थी, दूसरे इससे मिले पैसों से वह अपना निजी खर्च चलाता था। उसकी नकल की हुई कुरान की एक प्रति आज भी दिल्ली के समीप हजरत निजामुद्दीन औलिया के मकबरे में सुरक्षित है। फुर्सत के वक्त औरंगज़ेब टोपियाँ भी सीता था। उसका कहना था, कि बगैर मिहनत किये भोजन करना हराम है। शेख सादी और मौलाना हाफिज उसके प्रिय कवि थे। उनकी कवितायें उसे जुबानी याद थीं। हाँ, प्रशंसात्मक काव्य से उसे चिढ़ अवश्य थी।

शाहजहाँ ने 1634 ई० में उसे मुगल सल्तनत का एक मनसबदार नियुक्त किया। वह दस हजार अश्वारोही और चार हजार फौज का सेनापति बनाया गया और दक्कन का शासक नियुक्त हुआ। 1635 ई० में वह बुंदेला-अभियान में शामिल हुआ। तब वह सिर्फ 17 वर्ष का था। तब से जीवन के अंतिम क्षण तक वह युद्ध और प्रशासन के कठिन कामों में संलग्न रहा।

दिलरास बानो औरंगज़ेब की पहली बेगम थी जिससे शाहजहाँ ने उसकी शादी 1637 में कराई थी। दूसरी बेगम थी राजोरी-नरेश राजा राजू की बेटी नवाब बाई जिसका बेटा मुअज्जम था जो बहादुरशाह प्रथम के नाम से औरंगज़ेब के बाद हिन्दुस्तान का बादशाह बना। औरंगज़ेब की अन्य बेगमें थीं औरंगाबादी महल जो 1688 ई० में प्लेग की बीमारी से मरी। उदयपुरी महल सबसे छोटी बेगम थी जो औरंगज़ेब के आखिरी दिनों में उसके साथ रही।

दारा से औरंगज़ेब की कभी पटती न थी। दोनों के स्वभाव में काफी फर्क था। दारा शान्त स्वभाव का विचारवान और नम्र व्यक्ति था जबकि औरंगज़ेब क्रूर और उद्धत था। दारा बादशाह का प्रियपात्र था, लेकिन औरंगज़ेब को वह हमेशा शक की नजर से देखता था। शुरू में एक बार बादशाह ने औरंगज़ेब को पदच्युत भी कर दिया था, लेकिन दारा और

Scanned by CamScanner

बहन जहाँआरा की कोशिश से वह पुनः सेवा में ले लिया गया। 1645 ई० में बादशाह ने उसे मुगल सल्तनत के अशान्त प्रदेश गुजरात का शासक नियुक्त किया। गुजरात के विद्रोह को औरंगज़ेब ने बड़ी बहादुरी से दबाया और अपनी सामरिक और प्रशासनिक दक्षता का नमूना पेश किया।

दो साल बाद उसे बादशाह ने बल्ख और बदख्शाँ का शासक और प्रधान सेनापति बनाया। पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित इस क्षेत्र की विषम भौगौलिक रचना, प्रतिकूल जलवायु और खूँखार जनजातियों से संघर्ष में मुगल सेना की बड़ी क्षति हुई। धन-जन की काफी बर्बादी हुई और लाभ कुछ अधिक न मिला। कन्दहार को लेकर फारस के शासक से औरंगज़ेब की लंबी लड़ाई चली। दस करोड़ से ज्यादा रुपये खर्च हुए। लेकिन औरंगज़ेब कन्दहार ले न सका। शाहजहाँ ने नाखुश होकर औरंगज़ेब को वापस बुला लिया और दक्कन का शासक बनाकर भेजा। यहीं शाहजहाँ से उसके संबन्धों का बिगड़ना शुरू हुआ। शाहजहाँ उससे प्रसन्न नहीं था और उसके हर काम में नाराजगी जाहिर करता था। अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा मुगल सल्तनत के पुराने दुश्मन थे और वहाँ पिछले पचास वर्षों से लगातार युद्ध और लूटपाट का आलम बना हुआ था। खेती पूरी तरह बरबाद हो चुकी थी और राजस्व घटकर न्यूनतम रह गया था। शाहजहाँ चाहता था कि राजस्व बढ़े और औरंगजेब का कहना था कि पचास वर्षों में हुई बर्बादी की भरपाई चुटकी बजाकर नहीं की जा सकती। दक्कन के प्रशासनिक व्यय के लिए बारबार दिल्ली के शाही खजाने से धन निकाला जाता था और राजस्व वसूली के नाम पर मामूली रकम खजाने में जाती थी। औरंगज़ेब ने जिस धैर्य और दक्षता से स्थिति को संभाला, वह किसी भी शासक के लिए प्रशंसा का विषय हो सकता है। उसने गोलकुण्डा पर घेरा डाला और उसे संधि के लिए विवश किया। संधि की शर्तों के अनुसार प्रचुर धन औरंगज़ेब को प्राप्त हुआ। बीजापुर के विशाल क्षेत्र के उत्तरी हिस्से पर औरंगज़ेब का अधिकार हो गया। वह पूरा बीजापुर अपने कब्जे में कर लेता, लेकिन

शाहजहाँ ने उसे रोक दिया और बीजापुर से संधि करने का आदेश दिया। औरंगज़ेब को बड़ी निराशा हुई और बादशाह के प्रति उसकी कटुता और बढ़ गई।

1657 ई० में शाहजहाँ बीमार पड़ा। उसने भोजन करना बंद कर दिया। दवा बेअसर हो रही थी, कमजोरी बढ़ रही थी और स्थिति बदतर होती जा रही थी। किसी को बादशाह से मिलने नहीं दिया जाता था। बड़ा पुत्र दारा और कुछ विश्वासपात्र दरबारी ही उसके समीप रहते थे। उसकी बीमारी में दारा ने उसकी बड़ी सेवा की।

उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगज़ेब विजयी हुआ इसलिये नहीं कि वह वीर और बहादुर था और उसके अन्य भाई दारा, शुजा और मुराद बुजदिल और डरपोक थे, बल्कि उनकी सामरिक शक्ति औरंगज़ेब से अधिक थी। लेकिन कूटनीति में वे तीनों औरंगज़ेब से बहुत पीछे थे। औरंगज़ेब ने सब्जबाग दिखाकर मुराद को धोखे में रखा। उसकी मदद ली और सम्मिलित सामरिक शक्ति से उसने दारा को शिकस्त दी। बाद में उसने मुराद का सफाया किया और शुजा के पीछे अपनी फौज लगा दी। अब सल्तनत के भावी उत्तराधिकारी का मार्ग साफ हो गया। शाहजहाँ पहले ही आगरा के किले में बन्दी हो चुका था।

एक साल बाद औरंगज़ेब हिन्दुस्तान के तख्त पर 'अबुल मुजफ्फर मुहीउद्दीन मुहम्मद औरंगज़ेब बहादुर आलमगीर बादशाह गाजी' की पदवी धारण कर आसीन हुआ। उस वक्त उसकी उम्र चालीस पार कर चुकी थी। आरंभ से ही उसकी नीति हिन्दू-विरोधी रही। उसके पहले के बादशाह हिन्दू-राजाओं के मस्तक पर विशेष अवसरों पर टीका लगाया करते थे। औरंगज़ेब ने इस प्रथा को बंद करवा दिया।

उसने गैर-मुस्लिम प्रजा पर जजिया कर थोप दिया। यह कर और कुछ नहीं एक तरह का जुर्माना था जो मुस्लिम राज्य में रहने वाले, इस्लाम

Scanned by CamScanner

को न माननेवाले, से वसूला जाता था। कर देनेवाले को वसूल करने वाले अधिकारी के पास खुले पाँव आकर कर चुकाना पड़ता था। औरतों और चौदह साल से कम उम्र के बच्चों को छूट थी। अंधे, कोढ़ी और पागल भी अगर धनवान होते तो कर देने पर विवश किये जाते थे। मंदिर के पुजारियों तक को बख्शा नहीं जाता था। कर की राशि सालाना साढ़े तीन रुपये से लेकर साढ़े तेरह रुपये तक होती थी। उस कर से सबसे ज्यादा नुकसान गरीबों को झेलना पड़ता था। साढ़े तीन रुपये में उस जमाने में नौ मन गेहूँ आता था। दूसरे शब्दों में, एक आदमी रोजाना जितना अनाज खाता था उसके मूल्य के बराबर रकम जजिया के रूप में अदा करता था। सरकारी अधिकारी को यह कर नहीं देना पड़ता था चाहे वे गैर-मुस्लिम ही क्यों न हों। इस कर से आम जनता में बड़ी तबाही मची। एक जुमा को जब औरंगज़ेब नमाज पढ़ने जामा मस्जिद की ओर हाथी पर जा रहा था, दिल्ली के हिन्दू सड़क पर जमा हुए। बादशाह से प्रार्थना की कि जजिया लेना बंद कर दिया जाये। भीड़ बढ़ती गई। रास्ता बंद था। सिपाहियों ने लाख कोशिश की कि बादशाह को रास्ता मिले, लेकिन भीड़ और भी बढ़ती जा रही थी। बादशाह एक घंटे तक रास्ता खाली होने की प्रतीक्षा करता रहा, लेकिन लोग हट नहीं रहे थे। वे बार-बार दुखभरी आवाज में फरियाद कर रहे थे और औरंगज़ेब था कि उस पर कुछ असर नहीं हो रहा था। अंत में नाराज होकर उसने महावत को आदेश दिया कि वह हाथी को आगे बढ़ाये, लोगों के कुचले जाने की परवाह न करे। मुसलमान व्यापारियों से आयात कर नहीं लिया जाता था, जबकि गैर-मुस्लिम व्यापारियों को यह कर निश्चित रूप से चुकाना पड़ता था। गद्दी पर बैठने के कुछ साल बाद औरंगज़ेब ने फरमान निकाला कि सरकारी कार्यालयों से तमाम हिन्दू पेशकार और दीवान निकाल दिये जायें। हालत यह हो गई कि सारा कामकाज ही ठप्प होने लगा। अंत में फरमान में संशोधन किया गया और इन पदों पर हिन्दू और मुसलमान दोनों आधे-आधे रखे जाने लगे।

हिन्दू के मेलों पर भी उसने तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगा दीं। लोग खुलकर होली और दीवाली जैसे पर्व भी नहीं मना सकते थे। उसने गैर-मुस्लिम संस्थाओं (विद्यालयों और मंदिरों) को तोड़ डालने का हुक्मनामा जारी किया। उसके आदेश से सोमनाथ का मंदिर ध्वस्त कर दिया गया। वाराणसी के विश्वनाथ मंदिर को भी उसीने ध्वस्त करवाया। औरंगज़ेब की इन घोर विद्वेष कारवाइयों के परिणामस्वरूप मुल्क की हिन्दू और सिख आबादी में असंतोष की आग फैल गई और उसके जीवनकाल में ही यत्र-तत्र विद्रोह होने लगे। स्वयं इस्लाम के ही शिया सम्प्रदाय के लोगों में उसके प्रति वितृष्णा के भाव उत्पन्न होने लगे।

मराठों के नायक शिवाजी के विरोध का सबसे बड़ा कारण औरंगज़ेब की हिन्दू-विरोधी नीति ही थी। औरंगज़ेब की फौज के एक साधारण सिपाही छत्रसाल ने उसकी कट्टरता और अहं से क्षुब्ध होकर ही विद्रोह किया था और हिन्दू सरदारों का समर्थन प्राप्त कर उसने मुगलों पर आक्रमण किया था। मुगल साम्राज्य के एक हिस्से बुंदेलखण्ड पर छत्रसाल का आधिपत्य हुआ।

अपने शासन के पचास वर्षों में कभी औरंगज़ेब को चैन की नींद नसीब न हुई। जीवन के अंतिम बीस वर्ष उसने दक्कन की युद्धभूमि में बिताये। बीजापुर और गोलकुण्डा के शक्तिशाली शासकों को उसने मिट्टी सुँघाई। मराठों पर नियंत्रण किया, लेकिन उनका खात्मा नहीं कर सका। औरंगजेब का समकालीन ईतालवीं यात्री निकोलाओ मनूची लिखता है कि दक्कन से युद्ध में मुगलों की सेना के एक लाख लोग हर साल मारे जाते थे। दक्कन के लम्बे युद्ध ने मुगल साम्राज्य कों खोखला कर दिया। सल्तनत दिवालिया हो गई। सुदूर दक्षिण से उत्तरी भारत पर नियंत्रण रख पाना बादशाह के लिए असम्भव था। प्रशासन में ढिलाई और भ्रष्टाचार व्याप्त हो गया। सर्वत्र अशांति फैल गयी। कृषि और व्यापार दोनों को आघात पहुँचा। हिन्दुस्तान वह न रह गया जो पचास साल पहले था।

Scanned by CamScanner

इस अवनति के लिए औरंगजेब खुद काफी हद तक जिम्मेवार था। उसके शब्दकोश में 'विश्वास' शब्द था ही नहीं। वह अनावश्यक रूप से जागीरदारों, सूबेदारों और अन्य अधिकारियों के कामों में हस्तक्षेप करता था। सल्तनत की छोटी-छोटी बातों पर भी नजर रखता था। नतीजा यह हुआ कि नौकरशाही गैरजिम्मेदार होती गई, बादशाहत की कठपुतलीमात्र बनकर रह गई। जागीरों पर पुश्तैनी अधिकार नहीं दिया जाता था। इस लिए जागीरदारों और मनसबदारों की यही ख्वाहिश होती थी कि जबतक जागीर है ऐश-मौज कर लो, कल क्या होगा, कौन कह सकता है। वे विलासी और निकम्मे हो गये। युद्ध का खर्च कई गुना बढ़ जाने से विकासकार्य रुक गया। निम्नवर्ग को रोटी के लाले पड़ गए जबकि शासकवर्ग विलासिता में आकंठ डूब गया। शराबखोरी की यद्यपि मनाही थी, लेकिन शासकवर्ग खुले-आम बादशाही हुक्म की खिलाफत करता था। नशाखोरी अपनी चरमसीमा पर थी।

औरंगज़ेब अपने हर काम के पीछे कुरानपाक की आयतों की दुहाई देता था। जीवन के अंतिम दिनों में भी वह स्वयं आदेश लिखता था और जगह-जगह मुहम्मद साहब की नसीहतों का जिक्र करता था। यहाँ तक कि उसके प्रजाविरोधी कार्यों पर भी कुरानपाक के आदेशों की मुहर लगी होती थी। अकबर जैसी सूझबूझ और स्थिति को संभालने की सलाहियत उसमें न थी। अपनी सनक के आगे वह किसी की नहीं सुनता था। उसकी सबसे बड़ी गलती यह थी कि वह इस्लाम के आदेशों पर ही हिन्दुतान जैसे विशाल साम्राज्य का संचालन करता था जबकि धर्मशास्त्र और सियासत दो भिन्न हैं। देश, काल, पात्र का विचार किये बिना, धर्मान्धता के वशीभूत होकर, शासनसूत्र का संचालन करना मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ और औरंगज़ेब के जीवन काल में ही साम्राज्य में लम्बी दरारें पड़ गईं।

परिवार, समाज और साम्राज्य हर मुद्दे पर औरंगज़ेब को निराशा ही हाथ लगी। भाइयों को तो उसने जवानी में ही मार डाला था, बहनें भी

एक के बाद एक उसके सामने ही चल बसीं। उसके कई बेटे और पोते भी चल बसे। बेटी जेबुन्निसा को उसने कारागार में डाल दिया और वह वहीं मर गई। 1706 ई० में बेटी मेहरूनिसा और दामाद इजिदबख्श भी गुजर गए। बेटों में मुअज्जम, आजम और कामबख्श बचे थे जिन्हें बाप से कोई हमदर्दी न थी; वे बड़ी बेसब्री से उसके मरने का इन्तजार कर रहे थे ताकि सल्तनत पर कब्जा कर सकें। औरंगज़ेब अंतिम दिनों में भी अपने बेटों को अपने पास बुलाने से डरता था। उसे भय था कि कहीं वे उसकी भी वही दुर्गति न करें जो दुर्गति उसने अपने बाप शाहजहाँ की की थी। वह अपने अंतिम दिनों में अपने बेटों को जो पत्र भेजता था उनमें बार-बार हिलमिल कर रहने और साम्राज्य का शांतिपूर्ण बटवारा करने का अनुरोध करता था।

दक्कन के अंतिम अभियान के दौरान जब औरंगज़ेब का खेमा देवापुर में था, तभी वह बीमार पड़ा। यह बीमारी जानलेवा सिद्ध हुई। 1706 ई० में देवापुर से खेमा उठाकर अहमदनगर लाया गया। मजबूत इच्छाशक्ति की बदौलत उसने बीमारी से लंबा संघर्ष किया और अंततः 21 फरवरी 1707 ई० को उसकी इहलीला समाप्त हो गई। यह एक विचित्र संयोग था कि उसका जन्म घर से दूर खुली जगह में तम्बू के नीचे हुआ था और मृत्यु भी उन्हीं परिस्थितियों में हुई। बहन जहाँनारा की तरह उसकी भी इच्छा थी कि उसकी कब्र पर कोई स्मारक न बने। उसकी यह इच्छा पूरी की गई। उसके मरते ही उसके बेटों में गद्दी के लिए झगड़ा शुरू हुआ और अपने भाइयों आजम और कामबख्श का सफाया कर मुअज्जम बहादुरशाह प्रथम के नाम से दिल्ली के तख्त पर बैठा। मुगल साम्राज्य का सूर्य अस्तप्राय था। औरंगज़ेब की कर्मठता किसी भी परवर्ती मुगल शासक में न थी। दिनानुदिन मुगल साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती गई और अठारहवीं सदी बीतते-बीतते मुगल साम्राज्य का सूर्य सदा के लिए अस्त हो गया।

—सुरेन्द्र झा

Scanned by CamScanner

पहला भाग

Scanned by CamScanner

औरंगज़ेब

मुहीउद्दीन मोहम्मद औरंगज़ेब सम्राट् शाहजहाँ की छठी औलाद था। वह मुमताजमहल के गर्भ से 24 अक्टूबर 1618 ई० में पैदा हुआ था। जब औरंगज़ेब का पिता शाहजहाँ तरुण था तो उसने अपने पिता जहाँगीर और मलका नूरजहाँ के खिलाफ बगावत की थी। लेकिन महावन खाँ ने उस बगावत को दबा दिया। बतौर जामिन शाहजहाँ (शाहजादा खुर्रम) को अपने दो पुत्रों-दारा और औरंगज़ेब-को शाही दरबार में भेजना पड़ा। जहाँगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ के दोनों पुत्र आगरा लाये गये और उन दोनों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। औरंगज़ेब ने कुरान में महारत हासिल की थी। वह अरबी, फारसी और हिन्दुस्तानी भाषाओं का अच्छा ज्ञाता था।

वह अपने हाथ से कुरान शरीफ की नकल तैयार करता था और आवेदन पत्रों पर स्वयं आदेश लिखता था। उसे संगीत और प्रशंसासूचक कविताओं से सख्त चिढ़ थी। चित्रकला की भी उसने कभी तारीफ नहीं की। संगीत को तो उसने अपने दरबार से निर्वासित ही कर दिया। मोती मस्जिद के अलावा उसकी बनायी हुई किसी और महत्त्वपूर्ण इमारत का पता नहीं है। अनेक मस्जिदों और सरायों का निर्माण उसने अवश्य कराया।

उन दिनों हाथियों के शौकिया युद्ध का प्रचलन था। एक बार सम्राट् शाहजहाँ ने दो भयंकर हाथियों को आगरा में यमुना के तटपर लड़वाया। बादशाह शाहजहाँ अपने बेटों के साथ वहाँ उपस्थित था। एक हाथी ने क्रोध में पास खड़े चौदह वर्षीय औरंगज़ेब पर हमला किया। सभी सरदार और

Scanned by CamScanner

नौकर घबरा गए। चिल्लाहट मच गई। औरंगज़ेब हाथी की सूँड़ से आघात खाकर घोड़े से गिर गया। फिर तुरन्त उठ कर तलवार खींच ली, हाथी पर आघात किया और उसे पराजित कर भगा दिया। शाहजहाँ ने औरंगज़ेब की बड़ी प्रशंसा की। इस घटना के जरिये औरंगज़ेब ने अपने साहस का परिचय दिया था।

13 दिसम्बर 1634 ई० को औरंगज़ेब दसहजारी अश्वसेना का सेनापति नियुक्त हुआ।

बुंदेल-बुन्देला-युद्ध

1635 ई० में सम्राट् शाहजहाँ ने औरंगज़ेब को बुंदेला युद्ध का सेनापति बनाया। इसी साल अक्टूबर में मुगलों ने ओरछा पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। राजा जुझार सिंह भाग गए। ओरछा का मन्दिर ध्वस्त कर दिया गया और वहाँ मस्जिद बना दी गई। लूट में मिली करीब एक करोड़ की राशि शाही खजाने में भेज दी गई।

दक्षिण की सूबेदारी

औरंगज़ेब 1636 से 1644 ई० तक दक्षिण का सूबेदार रहा। दक्षिण भारत में उस समय कई राज्य थे। अकबर ने खानदेश, बरार और अहमदनगर जीता था। जहाँगीर के जमाने में मलिक अम्बर ने सिर उठाया था और मुगल अपना अस्तित्व कायम करने में असफल रहे थे। शाहजहाँ के जमाने में बीजापुर और गोलकुंडा सैनिकदृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। 1636 ई० में शाहजहाँ ने खुद जाकर फौजी कार्रवाई की। गोलकुंडा के शासक कुतुबशाह ने मुगुलों की अधीनता मान ली। बीजापुर के शासक आदिलशाह ने प्रतिरोध किया। लेकिन मई 1636 ई० में संधि हो गई। अहमदनगर मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया। गोलकुंडा और बीजापुर ने मुगलों को कर देना स्वीकार कर लिया। दक्षिण की सूबेदारी औरंगज़ेब को

मिली जिसने अपना मुख्यालय औरंगाबाद को बनाया। औरंगज़ेब के आदेश से मुगल सेनापति खाने-जमा और बीजापुर के सेनापति रनदौला ने शाहजी भोंसले को शिकस्त दी जिसने अहमदनगर के कठपुतले शासक निजामशाह और उसकी संपत्ति, सात दुर्ग आदि मुगलों को सौंप दिये। 1639 ई० में औरंगज़ेब ने मनमानी लूटपाट करने वाले मराठा खेलोजी भोंसले को कैद कर मरवा दिया। औरंगज़ेब की सूबेदारी दरबारियों की कानाफूसी के कारण 1644 ई० में समाप्त कर दी गई। ठीक उसी वर्ष शाहजादी जहाँआरा आग लगने के कारण भयंकर रूप से जख्मी हो गई। उसके अच्छे होने की खुशी में राजधानी में बहुत बड़ी जशन मनाई गई। इसी खुशी में जहाँआरा के आग्रह पर सम्राट् ने औरंगज़ेब के सभी कसूर माफ कर दिये और उसका ओहदा भी उसे वापस कर दिया। फरवरी 1645 ई० में वह गुजरात का सूबेदार बनाकर भेजा गया। वहाँ वह लगभग दो वर्षों तक रहा और उसने अपनी प्रशासकीय प्रतिभा का परिचय दिया। 1647 ई० में वह बल्ख और बदख्शाँ का सूबेदार बनाकर भेजा गया जहाँ काफी गड़बड़ी हो रही थी।

औरंगजेब बल्ख और बदख्शाँ में

बल्ख और बदख्शाँ के राज्य हिन्दूकुश पर्वत के उस पार बुखारा के अधीन थे। उनके शासक नजर मुहम्मद की अयोग्यता का लाभ उठा कर शाहजहाँ ने बल्ख और बदख्शाँ के विरुद्ध मुगलसेना भेजी। सेनापति शाहजादा मुराद बख्श था। मुराद असफल होकर, बादशाह की इच्छा के विपरीत, लौट आया। तब भेजा गया औरंगज़ेब 17 अप्रील 1647 ई० को। अलीमर्दान खाँ के साथ औरंगज़ेब मध्य एशिया के लिए रवाना हुआ। प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद काफी धैर्य और साहस के साथ औरंगज़ेब ने उन स्थलों पर काबू पाया। सुलह हो गई और मुगल फौज काबुल लौट आई। इस युद्ध में पाँच हजार सैनिक काम आये और शाही खजाने से चार करोड़ रुपये खर्च हुए। इस अभियान से हानि ही हानि हुई।

Scanned by CamScanner

बल्ख-अभियान के बाद औरंगज़ेब मुलतान और सिंध का सूबेदार नियुक्त हुआ। फिर इसे कान्धार-विजय के लिए भेजा गया।

कान्धार-अभियान

कान्धार-दुर्ग भारत-फारस मार्ग पर अवस्थित होने के कारण सामरिक और व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। इसलिए दोनों देशों के शासकों की नजर इस दुर्ग पर रहती थी। साथ ही कान्धार का क्षेत्र धन दौलत से भरा पूरा था। 1522 ई० में बाबर ने इसे जीता था, लेकिन 1558 ई० में इसे फारस ने वापस ले लिया। 1594 ई० में अकबर ने इसे फिर जीता। 1623 ई० में यह फिर हाथ से निकल गया। 1638 ई० में शाहजहाँ ने फिर इसे मुगल-साम्राज्य में मिला लिया। लेकिन सत्तावन दिनों के घिराव के बाद 1649 ई० इसे फिर फारस ने छीन लिया। कान्धार-विजय साम्राज्य की प्रतिष्ठा से जुड़ी थी। काफी तैयारी के साथ पुनः औरंगज़ेब और सादुल्ला ने मई 1652 ई० में कान्धार को घेर लिया। फारस के तोपखाने के सामने मुगल तोपखाना कमजोर था। शाही फौज के पास सामान की भी कमी थी। ऐसा परिस्थिति में शाहजहाँ के आदेश से मुगल फौज ने कान्धार से घेरा उठा लिया। इस सैनिक अभियान की विफलता का सारा दोष औरंगज़ेब के मत्थे मढ़ा गया। अगले वर्ष बादशाह के बड़े बेटे दारा शिकोह को भी कान्धार में उसी दुर्भाग्य का सामना करना पड़ा। कान्धार के तीन अभियान में लगभग दस करोड़ रुपये खर्च हुए और मुगलों के नाम पर बट्टा लगा। दूसरी ओर फारस की सामरिक शक्ति की धाक जम गई। साथ ही भारतीय सीमा पर फारस का आतंक छा गया।

दक्षिण की दूसरी सूबेदारी

कान्धार-अभियान से लौटने के बाद औरंगज़ेब को दूसरी बार दक्षिण की सूबेदारी मिली। बीजापुर और गोलकुंडा सिर उठा रहे थे जिन्हें दबाना आवश्यक था। इस दर्म्यान दक्षिण की स्थिति काफी बिगड़ चुकी

थी और शाही राजस्व बहुत घट गया था। सब तरफ कुशासन व्याप्त था। राजस्व सुधार में मुर्शीदकुली खाँ ने औरंगज़ेब की बड़ी मदद की। शाही कर निश्चित कर दिया गया। इन सब मामलों में अकबर-कालीन टोडरमल की पद्धति काम में लाई गई। इससे शाही राजस्व में बढ़ोत्तरी हुई। औरंगज़ेब की इस दूसरी सूबेदारी के दर्म्यान बादशाह से उसका मतभेद कई कारणों से चला। चुगलखोरी ने बादशाह के कान भर दिये। औरंगज़ेब के कुछ सही सुझाव तक बादशाह ने अस्वीकृत कर दिये।

गोलकुंडा एक बड़ा समृद्ध और सुसिंचित राज्य था। इसकी राजधानी (हैदराबाद) हीरे के व्यापार के लिए जगत्प्रसिद्ध थी। गोलकुंडा के जिम्मे लाखों रुपये बकाये थे। 1656 ई० में औरंगज़ेब ने गोलकुंडा पर चढ़ाई की। कुतुबशाह किले में जा छिपा। औरंगज़ेब ने संधि की सभी शर्तें ठुकरा दीं। इधर शाहजहाँ की तरफ से गोलकुंडा के पक्ष में पत्र आ रहे थे। दो महीने के घेरे के बाद बादशाह के आदेश से औरंगज़ेब ने, अपनी मर्जी के विरुद्ध, गोलकुंडा से सेना हटा ली। कुतुबशाह की दूसरी लड़की की शादी औरंगज़ेब के प्रथम पुत्र मुहम्मद सुलतान से कर दी गई। गोलकुंडा द्वारा एक करोड़ रुपये का भुगतान हुआ। यह अभियान औरंगज़ेब के लिए काफी मँहगा पड़ा क्योंकि बादशाह के दिमाग में इस शाहजादे के विरुद्ध अनेक बातें डाल दी गई थीं।

बीजापुर पर आक्रमण

शाहजहाँ के शासनकाल तक बीजापुर के साथ बड़ा मधुर सम्बन्ध था। 4 नवम्बर 1656 ई० को बीजापुर के शासक मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु हो गई। गद्दी पर आदिलशाह का पुत्र अली आदिलशाह द्वितीय के नाम से तख्तेनशीं हुआ। उसकी उम्र 18 वर्ष की थी। नये सुलतान के गद्दी पर बैठते ही राज्य में गड़बड़ी शुरू हो गई। औरंगज़ेब ने शाहजहाँ को पत्र लिखा कि अली आदिलशाह सुलतान का असली वारिस नहीं है। राज्य के

Scanned by CamScanner

कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों को मिला लिया गया। आक्रमण करने की स्वीकृति भी मिली। फरवरी में मुगल फौज बीदर के पास पहुँच गई। 29 मार्च को किले के बारूदखाने में भयंकर विस्फोट हुआ और उसमें किलेदार सिद्दी मरजान अपने दो बेटों के साथ बुरी तरह घायल हो गया। सिद्दी मरजान ने मरते-मरते किला औरंगज़ेब को सौंप दिया। दूसरे रोज काफी मारकाट मची। इसमें मुगलों की ओर से महावत खाँ ने बड़ी बहादुरी दिखलाई। तीस हजार बीजापुरी सैनिको ने आगे बढ़ कर औरंगज़ेब का मुकाबला किया, लेकिन विजय मुगलों के हाथ में रही। इस अभियान में औरंगज़ेब का सबसे बड़ा सहायक मीरजुमला था। अंत में संधि हो गई। बीदर, कल्याणी और परेंदा औरंगज़ेब के हाथ में रहे। साथ ही, लड़ाई का खर्च एक करोड़ रुपया भी बीजापुर ने देना स्वीकार किया। बीजापुर को पूर्ण रूप से ध्वस्त करने की औरंगज़ेब की मनोंकामना मुगल सम्राट् की दखलंदाजी के कारण पूरी नहीं हो पाई।

शाहजहाँ की बीमारी और उसके लड़कों का विद्रोह

शाहजहाँ के जमाने में मुगल-साम्राज्य वैभव, ठाठ-बाट और शानो-शौकत के चरम शिखर पर था। विदेश के यात्री और राजदूत की आँखें मयूर-सिंहासन और कोहिनूर आदि हीरों को देखकर चकाचौंध में पड़ जाती थीं। शाहजहाँ के चार पुत्र थे। सबसे बड़ा दाराशिकोह था जो अपने पिता के साथ रहता और शासनकार्य देखता। यह बड़ा विद्वान्, धार्मिक-सहिष्णुता का प्रतीक तथा अकबर के रास्ते पर चलने वाला था। शाहजहाँ चाहता था कि उसका उत्तराधिकारी दारा हो। दारा की उम्र 42 वर्ष की थी। पिता के प्यार के कारण उसने सिवा कान्धार-युद्ध के किसी भी युद्ध में भाग नहीं लिया था।

बादशाह का दूसरा पुत्र शुजा बंगाल का सूबेदार था। यह वीर और महत्वाकांक्षी था। लेकिन लम्बे समय तक बंगाल की जलवायु में रहने के

कारण वह एक प्रकार से निष्क्रिय हो गया था। औरंगज़ेब बादशाह का तीसरा पुत्र था जिसने जीवन में संघर्ष ही संघर्ष देखा था और हर तरह की कठिनाइयों के बर्दाश्त करने का आदी था। चौथा पुत्र मुरादबख्श गुजरात का सूबेदार था जो वीर तो था, लेकिन सुरा-सुन्दरी में लिप्त रहता था। इन चार पुत्रों के अलावा शाहजहाँ की दो पुत्रियाँ थीं-जहाँआरा और रौशनआरा।

जहाँआरा दारा की पक्षधर थी, रौशनआरा औरंगज़ेब की। राजधानी की सारी बातें रौशनआरा के मार्फत औरंगजेब के पास पहुँचा करतीं।

छै सितम्बर 1657 ई० को शाहजहाँ दिल्ली में गंभीर रूप से बीमार पड़ा। यह समाचार दारा ने गुप्त रखा। शाहजहाँ ने अपने स्वास्थ्य में जब कोई सुधार न पाया तो आगरा जाने की इच्छा प्रकट की जहाँ उसकी बीवी मुमताज महल दफन की गई थी। 26 अक्टूबर 1657 ई० को शाहजहाँ आगरा पहुँच गया। बादशाह की जगह पर दारा के हुक्म निकलने लगे। उधर बादशाह के तीन पुत्रों के बीच मुगलतख्तोताज हासिल करने की योजना बनने लगी।

शुजा बंगाल से चल पड़ा। उसको रोकने के लिए दारा का ज्येष्ठ पुत्र सुलेमानशिकोह और मिर्जा राजा जयसिंह भेजे गये। गुजरात में मुराद ने अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया और औरंगज़ेब के साथ गठबन्धन करके दोनों की फौजों ने मिलकर आगरे की ओर कूच किया। महाराज जसवन्त सिंह को औरंगज़ेब के खिलाफ तथा क़ासिम खाँ को मुराद के खिलाफ भेजा गया। इन्हें हिदायत थी कि यथासम्भव युद्ध की नौबत न आये और शाहजादों को समझा-बुझा कर वापस कर दिया जाये। लेकिन स्थिति बिगड़ती गई। सभी को विश्वास था कि बादशाह की मौत हो गई है और दारा ने तख्तोताज हासिल कर लिया है।

4 अक्टूबर 1657 ई० को औरंगज़ेब बीजापुर-अभियान से मुक्त हुआ और 25 जनवरी 1658 ई० को उसने तख्तोताज के दावेदार के रूप में आगरा

Scanned by CamScanner

की ओर प्रस्थान किया। उसे दारा पर विश्वास नहीं था और वह निर्णय के क्षणों में आगरा जल्द से जल्द पहुँचना चाहता था। उसका तर्क यही था कि वह अस्वस्थ पिता के दर्शन करना चाहता है। उसके साथ तीस हजार सैनिक तथा अंग्रेजों और फ्रांसीसियों द्वारा संचालित बहुत बड़ा तोपखाना था। रास्ते में दीपालपुर के पास औरंगज़ेब और मुराद की सेनाएँ मिलीं जहाँ औरंगज़ेब ने मुराद को बादशाह बनाने का वचन दिया। चम्बल नदी के तीर पर धरमत (धरमपत) के मैदान में दूसरे रोज शाही फ़ौज से दोनों शाहजादों का मुकाबला होने वाला था।

उत्तराधिकार के लिए युद्ध

धरमत (धरमपत) के नज़दीक महाराजा जसवंतसिंह बागी शाहजादों को रोकने के लिए तत्पर थे। इसी समय उन्हें दोनों शाहजादों के गठबन्धन का समाचार मिला। दोनों शाहजादों के साथ उदारतापूर्ण व्यवहार किया जाये-बादशाह की यह हिदायत जसवंतसिंह को संकट में डाल रही थी। राजा की फौज के बहुत से लोग गुप्त रूप से औरंगज़ेब से मिले हुए थे। युद्ध के कौशल में औरंगज़ेब जसवंतसिंह से बीस पड़ता था। 15 अप्रिल को दोनों पक्षों का भयंकर मुकाबला हुआ। सामने से औरंगज़ेब, बायें से मुराद और दायें से सफशिकन खाँ, जसवंतसिंह पर टूट पड़े। जसवंत का मददगार क़ासिम खाँ अपने सिपाहियों के साथ मैदान छोड़कर भाग गया। घायल होकर जसवंतसिंह ने मैदान छोड़ दिया और फिर उन्होंने अपने राज्य जोधपुर की राह पकड़ी। औरंगज़ेब की विजय हुई और शाही फौज की हार। विजयोपरांत युद्धभूमि में औरंगज़ेब ने घुटने टेक कर खुदा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की।

औरंगज़ेब और मुराद की फौजें आगरा की ओर चल पड़ीं। इधर, धरमत (धरमपत) की पराजय की खबर शाही दरबार में दस दिनों बाद पहुँची। घबराहट मच गई। तबतक शुजा से युद्ध के लिए गया हुआ दारा

का पुत्र सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह वापस नहीं लौटे थे। अब साठ हजार सैनिकों के साथ शाहजादा दारा औरंगज़ेब से मुकाबला करने के लिए निकल पड़ा। 29 मई 1658 ई० को समूगढ़ के मैदान में दारा और औरंगज़ेब का मुकाबला हुआ। इसी दिन यह निर्णय होने वाला था कि मुगलसम्राट् का उत्तराधिकारी कौन होगा। दारा के प्रधान फौजी सलाहकार खलीलुल्लाह खाँ को औरंगज़ेब ने अपनी ओर मिला लिया था। युद्ध के बीच किसी की गलत सलाह पर दारा हाथी से उतर कर घोड़े पर आ गया। दारा के कई विश्वस्त राजपूत सेनापति मारे गए। दारा की फौज घिर गई। इधर दारा के सैनिकों ने उसके हाथी का हौदा खाली देखा और मैदान छोड़कर भाग चले। दारा ने भी मैदान छोड़ दिया और आगरा की ओर भाग चला। लूट की सारी सामग्री औरंगज़ेब के हाथ लगी। समूगढ़ के युद्ध में दारा हार गया, औरंगजेब जीत गया।

आगरे में मुर्दनी

क्लांत, पराजित, मायूस शाहजादा दारा रात में किसी तरह आगरा पहुँचा। राज परिवार में खलबली मच गई। रात खतम होने के पहले दारा अपनी बीवी और बाल-बच्चों के साथ आगरा से दिल्ली के लिए चल पड़ा। शाहजहाँ ने उसके साथ प्रचुर मात्रा में अशर्फियाँ और जवाहरात भेजे। एक जून 1658 ई० को औरंगज़ेब और मुराद आगरा की सीमा पर पहुँच गए। वहीं औरंज़ेब को बादशाह के हाथ का लिखा हुआ एक पत्र मिला कि वह किले में आकर भेंट करे। औरंगज़ेब ने बड़ी चालाकी से भेंट करने में असमर्थता जाहिर की। आगरा किला घेर लिया गया। औरंगज़ेब ने अपने बड़े बेटे मुहम्मद सुलतान को किले पर अधिकार करने के लिए भेजा। यमुना नदी के पानी पर रोक लगाकर बादशाह को बाध्य किया गया कि वह किले की चाबी मुहम्मद सुलतान को देदे। शाहजहाँ की द्रवित प्रार्थना पर भी औरंगज़ेब ने कोई ध्यान नहीं दिया। अंत में किला मुहम्मद सुलतान को सौंप दिया

Scanned by CamScanner

गया और शाहजहाँ अपने ही घर में बंदी हो गया। शाही खजाने पर औरंगज़ेब का अधिकार हो गया।

आगरा-दुर्ग पर अधिकार करके औरंगज़ेब दारा की खोज में दिल्ली की ओर चल पड़ा। मथुरा के निकट मुराद और औरंगज़ेब की सेनाएँ पड़ाव डाले थीं। वादे के मुताबिक मुराद बादशाह बनने के लिए अधीर हो रहा था। एक जशन के आयोजन में मुराद को शराब पिलाकर बेहोश कर दिया गया और उसी रात बड़ी चतुरता से औरंगज़ेब ने उसे कैद कर के तुरत हाथी के बंद हौदे में सलीमगढ़ की ओर रवाना कर दिया। यह काम इतनी जल्दीबाजी में किया गया कि मुराद के सैनिकों को कुछ भी पता नहीं लगा। बाद में उन्हें औरंगज़ेब की फौज में शामिल होने के लिए बाध्य होना पड़ा। तीन वर्ष तक ग्वालियर दुर्ग में कैद रहने के पश्चात् अभागे मुराद का शिरोच्छेदन कर दिया गया। उसकी लाश ग्वालियर के ही दुर्ग में दफन कर दी गई।

5 जून 1658 ई० को दारा ने दिल्ली पहुँच कर सैन्यसंगठन किया। फिर एक माह बाद लाहौर पहुँचा जहाँ उसने युद्ध की तैयारी की। इधर आगरा पर अधिकार करने के बाद औरंगज़ेब दारा की खोज में चल पड़ा। दिल्ली में 23 जुलाई 1658 ई० को आलमगीरगाजी की उपाधि धारण कर औरंगज़ेब बादशाह बन गया। दारा का पीछा करना जारी रहा। दारा लाहौर से भाग गया। उसका पीछा होता रहा। दारा के अनुयाई धीरे-धीरे उसको छोड़ते गए। कच्छ में उसका स्वागत हुआ। अहमदाबाद में शाहनवाज खाँ ने उसकी बड़ी मदद की। दारा के पास एक बड़ी फौज जमा हो गई।

इस बीच औरंगज़ेब ने खजवा के युद्ध में अपने भाई शुजा पर विजय प्राप्त कर ली थी और शुजा फिर भाग गया था। शुजा से फुर्सत पाकर औरंगज़ेब ने फिर दारा का पीछा किया। देवराई के युद्ध में एक बार फिर औरंगज़ेब विजयी हुआ और दारा का भाग्यसूर्य सदा के लिए अस्त हो

गया। दारा का मददगार वीर शाहनवाज खाँ युद्ध में काम आया। दारा अपने बेटे सिपरशिकोह के साथ गुजरात की ओर भाग गया। औरंगज़ेब के आदेश से राजा जयसिंह और बहादुर खाँ ने दारा का पीछा करना जारी रखा। दारा की स्थिति अत्यन्त खराब थी। अब उसका कोई मददगार न था। उसे प्राण बचाने की चिन्ता थी। उसके शरीर पर गंदा वस्त्र था। साथ में सिर्फ एक घोड़ा, एक बैलगाड़ी, महिलाओं के लिए पाँच ऊँट थे। एशिया के सबसे समृद्ध साम्राज्य के होने वाले सम्राट् का यह दुर्भाग्य था कि वह कच्छ के रन में चक्कर काट रहा था। औरंगज़ेब के आदेश हर जगह पहुँच चुके थे जिससे दारा को कहीं से भी मदद मिलना असंभव था। अब दारा के सामने एक ही उपाय था कि अपने पूर्वज बादशाह हुमायूँ की तरह वह फारस जाकर अपना भाग्य आजमाये। उसकी बीवी नादिरा बानो बीमारी की अवस्था में ही चल बसी।

बोलन घाटी के पास मलिक जीवन के घर दारा ने शरण ली। इस मलिक जीवन की जान दारा ने शाहजहाँ के कोप से बचाई थी। लेकिन इस कृतज्ञता को भूल कर मलिक जीवन ने पुरस्कार के लोभ में दारा, उसके पुत्र सिपरशिकोह और दो शहजादियों को गिरफ्तार करवा दिया। ये सभी कैदी दिल्ली लाये गये, जहाँ उन्हें सड़कों पर घुमाया गया। मोटे, गंदे कपड़ों में आवृत्त, खुले हौदे में दारा एक छोटी हथिनी के ऊपर अपने 14 वर्षीय छोटे पुत्र सिपरशिकोह के साथ बैठा था। साथ में था नंगी तलवार लिये गुलाम नजरबेग। दारा के पैर बंधे थे। अगस्त महीने के सूर्य की कड़ी धूप उसके चेहरे पर पड़ रही थी। सड़क पर खड़ी जनता दारा के लुटे भाग्य पर आँसू बहा रही थी। शाम को औरंगज़ेब ने एक गुप्त बैठक में यह निर्णय लिया कि इस्लाम के विरुद्ध आचरण करने के कारण दारा की जान ले ली जाये। तदनुसार हबासपुरा की एक कोठरी में नजरबेग ने दारा की हत्या कर दी। दारा की लाश को दिल्ली की सड़कों पर घुमाया गया। हुमायूँ के मकबरे में दारा की लाश दफन की गई।

Scanned by CamScanner

दारा के बड़े बेटे सुलेमान ने शुजा पर विजय पाई थी। इसी बीच उसे अपने पिता की पराजय का समाचार मिला। दिल्ली और आगरा पर औरंगज़ेब का अधिकार हो चुका था। सुलेमान के साथी उसका साथ छोड़ते जा रहे थे। किसी तरह वह श्रीनगर पहुँचा जहाँ के राजा पृथ्वी सिंह ने उसके परिवार को शरण दी। औरंगज़ेब ने 27 जुलाई 1659 ई० को राजा राजरूप को श्रीनगर भेजा। अन्त में सुलेमान शिकोह पकड़ा गया और 2 जनवरी 1661 ई० को दिल्ली लाया गया। उसे ग्वालियर के किले में भेज दिया गया जहाँ उसे अफीम का पानी पिला-पिला कर मई 1662 ई० में मरने को मजबूर किया गया।

उधर बंगाल में शुजा ने फिर फौज इकट्ठी की और दिल्ली की ओर चल पड़ा। खजवा के मैदान में औरंगज़ेब से उसका भुकबला हुआ जहाँ उसकी हार हुई। मीरजुमला और शाहजादे मुहम्मद सुल्तान के नेतृत्व में एक बड़ी फौज ने शुजा का पीछा किया। बनारस और पटना होते हुए शुजा मुंगेर पहुँचा। शाही सेनापति मीरजुमला भी मुंगेर पहुँच गया। शुजा को फिर भागना पड़ा। शाही सेना ने बंगाल की राजधानी राजमहल पर कब्जा कर लिया। शुजा की सेना घटती गई और मीरजुमला की सेना बढ़ती गई। इस तरह की भागदौड़ की लड़ाई से शाही सेना को काफी नुकसान उठाना पड़ा। इस बीच औरंगज़ेब का बेटा शाहजादा मुहम्मद सुल्तान शुजा से जा मिला। उसकी शादी शुजा की बेटी गुलरुख बानों से हुई। बरसात के मौसम में शुजा ने कुछ इलाके फिर जीत लिये। लेकिन मीरजुमला की राजनीति के सामने शुजा को मात खानी पड़ी। शाहजादा मुहम्मद सुल्तान ने भी शुजा को धोखा दिया और फिर मुगल फौज में आकर मिल गया। मुहम्मद सुल्तान के आचरण के कारण मीरजुमला ने उसे कैद कर लिया और औरंगज़ेब के पास भेज दिया। औरंगज़ेब के आदेश से शाहजादा का शेष जीवन कैदखाने में ही बीता।

12 अप्रील को शुजा ढाका पहुँचा, जहाँ उसे कोई मदद न मिली। वह

भाग खड़ा हुआ। अराकान के राजा ने उसे शरण दी। अराकान में भी उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया। अपने ऊपर शुजा द्वारा गुप्त आक्रमण की सूचना मिलने पर अराकान का राजा आगबबूला हो गया और शुजा की परिवार समेत हत्या कर दी गई।

दारा, शुजा, मुराद, सुलेमान शिकोह की हत्या कर तथा शाहजहाँ को कैद कर औरंगज़ेब हिन्दुस्तान का एकछत्र सम्राट् हो गया।

औरंगजेब का राज्याभिषेक

औरंगज़ेब का औपचारिक राज्याभिषेक 21 जुलाई 1658 ई० को दिल्ली में हुआ, लेकिन एक दूसरा भव्य राज्याभिषेक 5 जून 1659 ई० को फिर दिल्ली में ही हुआ। चूँकि उसका पिता शाहजहाँ आगरे में नजरबन्द था, इसलिए नये बादशाह ने अपनी राजधानी दिल्ली बनाई। राज्याभिषेक के बाद औरंगज़ेब पहली बार आगरा फरवरी 1666 में अपने पिता की मृत्यु के बाद गया। 1662 ई० में औरंगज़ेब भयंकर रूप से बीमार पड़ा। इस बीच भी दरबार में वह अपना चेहरा दिखा देता और तोहफे स्वीकार करता। अपने धैर्य और कर्मठता के कारण उसने किसी को शक भी नहीं होने दिया कि वह बीमार है।

पलामू, आसाम, कुचबिहार, ईदर और तिब्बत आदि तक मुगल फौज ने धावा मारा। उत्तराधिकार के युद्ध में आर्थिक रूप से प्रशासन को बड़ी हानि हुई थी। उसको पूरा करने के लिए राहदारी और पानदारी कर लगाये गये।

औरंगज़ेब ने इस्लाम के सेवक के रूप में उत्तराधिकार पर हक जमाया था। इसके लिए उसने कई आदेश जारी किये। सिक्कों पर कलमा की मुहर उठा दी गई। नौरोज का उत्सव बंद कर दिया गया। इस्लाम के नियम-कानून को लागू करने के लिए विशेष धार्मिक अधिकारी बहाल किए गए।

Scanned by CamScanner

भांग की उपज पर पाबंदी लगाई गई। पुरानी मस्जिदों की मरम्मत करवाई गई और उनकी व्यवस्था के लिए वेतनभोगी कर्मचारी नियुक्त किये गए। संगीत पर पाबंदी लगा दी गई। एक बार लगभग एक हजार संगीतज्ञों ने एक रविवार को जब औरंगज़ेब मस्जिद जा रहा था, जुलूस निकाली जिसमें काफी रोना-धोना मचा हुआ था। औरंगज़ेब द्वारा कारण पूछने पर बताया गया कि बादशाह ने संगीत को मार डाला है, उसी को लोग कब्र तक ले जा रहे हैं। बिना कुछ शिकन लाये औरंगज़ेब ने बड़ी गंभीरता से यह संदेश भिजवाया कि संगीत को इस तरह दफन किया जाय कि वह फिर ऊपर न आये।

जन्मदिन के रोज बादशाह को सोने और चाँदी से तौला जाता था। औरंगज़ेब ने उसे भी बंद करबाया। आगरा दुर्ग के मुख्य फाटक पर जहाँगीर ने दोनों तरफ हाथी की दो प्रस्तर प्रतिमायें लगाई थीं। उन्हें हटा दिया गया। हिन्दू पद्धति से नमस्कार करने की प्रथा उठा दी गई और इस्लामी पद्धति लागू की गई। बाद में राज्याभिषेक का वार्षिक महोत्सव भी बंद कर दिया गया। पहले बादशाह लोग हिन्दू राजाओं के मस्तक पर अपनी उँगली से टीका लगाते थे। औरंगज़ेब ने इस हिन्दूपद्धति को बंद करवाया। कब्रों के ऊपर साये के लिए छप्पर डालना तथा महिलाओं द्वारा संतों के मजार पर पहुँचना बंद कर दिए गए। अकबर ने प्रातः किले के झरोखे से प्रजा को दर्शन देने की प्रथा शुरू की थी। औरंगज़ेब ने इसे भी समाप्त कर दिया।

उत्तरी-पूर्वी सीमा पर युद्ध

शुजा के पलायन और मृत्यु के बाद मीरजुमला बंगाल का सूबेदार हुआ। उसे यह आदेश मिला कि वह आसाम और अराकान के अनुशासनहीन जमींदारों को सर करे। तदनुसार एक नवंबर 1661 ई० को मीरजुमला पैदल, अश्व और जलसेना लेकर ढाका से चल पड़ा। कुचबिहार के बाद उसने आसाम के जंगली इलाकों पर हमला किया।

मुगल सेना फतह के नारे लगाती ब्रह्मपुत्र तक पहुँच गई। वहाँ मीर

जुमला ने जलयुद्ध में विजय प्राप्त कर तीन सौ नावों पर अधिकार किया। गढ़गाँव का राजा जयध्वज भाग गया। अराकान की अहोम जनजाति के लोगों से इसका कड़ा मुकाबला हुआ। उसी दर्म्यान मुगल शिविर में संक्रामक रोग फैल गया जिसमें सैकड़ों लोग मर गये। चीजों की कीमतें बढ़ गईं। उधर मीरजुमला भी गंभीर रूप से बीमार पड़ गया। इसलिए अहोम के लोगों और मुगलों के बीच संधि हो गई। तदनुसार अहोमराज की बेटी, सोने-चाँदी और हाथी मुगल शिविर में पहुँचाये गये। मीरजुमला ढाका की ओर लौट पड़ा। लेकिन, रास्ते में ही 31 मार्च 1663 ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

मीरजुमला की मृत्यु के कुछ वर्ष बाद अहोम लोगों ने फिर उपद्रव शुरू किया। मिर्जा राजा जयसिंह के बेटे रामसिंह ने गौहाटी को घेर लिया। लेकिन ले न सका। औरंगज़ेब ने असन्तुष्ट होकर उसे मुगल दरबार में वापस बुला लिया। 24 दिसंबर 1665 ई० को शाइस्ता खाँ के बेटे बुजुर्ग उमेद खाँ के सेनापतित्व में अराकान पर फिर चढ़ाई हुई और कई खतरनाक लड़ाइयों के बाद चटगाँव पर मुगलों का अधिकार हो गया। चटगाँव का नाम रखा गया इस्लामाबाद।

उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर युद्ध

उत्तरी-पश्चिमी सीमा मुगल बादशाहों के लिए पुराना सिरदर्द थी। 1667 ई० में युसुफजाइयों ने पेशावर के इर्द-गिर्द उपद्रव शुरू किया। उनलोगों ने सिंधु नदी पार कर पाखली नामक स्थान पर आक्रमण किया जहाँ से कश्मीर जाने का मार्ग था। मुगल चौकियों पर आक्रमण होने लगे और इलाके में अराजकता फैल गई। बादशाह ने सीमा की सुरक्षा के लिए कड़े आदेश जारी किये। तीन तरफ से आक्रमण की योजना बनाई गई। युसुफजाइयों की बस्तियाँ उजाड़ दी गईं और उनकी फसलें बर्बाद कर दी गईं। इस कठिन प्रहार से 1672 ई० तक युसु फजाई शांत रहे। लेकिन जलालाबाद के फौजदार के मूर्खतापूर्ण व्यवहार के कारण खैबर घाटी में फिर अशांति फैली। अफरीदी

Scanned by CamScanner

उठ खड़े हुए। जब अफगानिस्तान का सूबेदार मुहम्मद अमीन खाँ लावलश्कर के साथ उनलोगों को दबाने गया तो रात में ही अफरीदियों ने उसके शिविर पर हमला बोल दिया। मुगल सूबेदार सब कुछ खोकर पेशावर की ओर भागा। उसकी माँ, बीवी और लड़की तक कैद हो गई थीं।

मुहम्मद अमीन खाँ को पदच्युत किया गया और महावत खाँ चौथी बार उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर सूबेदार बनाकर भेजा गया। लेकिन सफलता उसे भी हाथ न लगी। तब शुजायत खाँ और महाराजा जसवंत सिंह भेजे गए। लेकिन इन्हें भी कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अंत में औरंगज़ेब स्वयं उत्तरी-पश्चिमी सीमा की ओर चला। लेकिन उपद्रव कमोवेश जारी रहा। औरंगज़ेब ने स्थिति पर काबू पाने के लिए कूटनीति का प्रदर्शन किया और कुछ सफलता पाकर 1675 ई० में दिल्ली वापस लौट आया।

राजपूतों से युद्ध

10 दिसम्बर 1678 ई० को खैबर घाटी के पास महाराजा जसवंत सिंह की मृत्यु हो गई। औरंगज़ेब ने यही मौका ठीक समझकर जसवंत सिंह के राज्य जोधपुर को मुगल साम्राज्य में मिला लेने का निश्चय किया। इसी बीच उसे सूचना मिली कि महाराजा की दो रानियों ने लाहौर में दो पुत्रों को जन्म दिया है। एक तो कुछ ही हफ्तों में मर गया, लेकिन दूसरा अजित सिंह जिंदा रहा। औरंगज़ेब की बराबर यह चेष्टा रही कि वह किसी प्रकार राजकुमार को अपने हरम में ले आये। लेकिन दुर्गादास की ईमानदारी और बहादुरी के कारण अजित सिंह की जान बच पाई। किसी तरह रानी और अजित दिल्ली से निकल भागे और मारवाड़ पहुँच गये। अब मारवाड़ पर मुगल फौज ने चढ़ाई की योजना बनाई। शाहजादा मुहम्मद अकबर सेनापति नियुक्त हुआ। बादशाह खुद अजमेर में रहा। जोधपुर में मुगलों ने बड़ा उत्पात मचाया और मुगलों का उसपर अधिकार हो गया।

अब मेवाड़ की बारी थी। बादशाह अकबर के ही जमाने में हिन्दुओं पर

से जज़िया कर उठा लिया गया था। लेकिन औरंगज़ेब ने उसे फिर लागू कर दिया। मेवाड़ के महाराणा राजसिंह से जज़िया कर की माँग की गई, लेकिन उसने कर चुकाने से इन्कार कर दिया। जोधपुर के राजकुमार अजित सिंह की माँ मेवाड़ की राजकुमारी थी। इसलिए राजसिंह ने न केवल रानी और राजकुमार को शरण दी बल्कि सिसोदिया और राठौर वीरों ने मिलकर मुगल बादशाह से युद्ध करने का भी निश्चय किया। मुगल फौज मेवाड़ की सीमा में घुस गई और उदयपुर पर अधिकार कर लिया। राजपूत अरावली पर्वत की घाटियों में चले गए जहाँ मुगलों का पहुँचना कठिन था। औरंगज़ेब के हटते ही महाराणा ने पहाड़ी से उतर कर अचानक शाहज़ादे अकबर पर हमला कर दिया। बादशाह ने क्षुब्ध होकर अकबर का तबादला मारवाड़ कर दिया और उसकी जगह आ गया शाहज़ादा आज़म। राजपूतों की जानलेवा बहादुरी के सामने मारवाड़ में भी अकबर असफल रहा। जनवरी 1681 ई० को परेशान शाहज़ादे अकबर ने गुप्त रूप से राजपूतों से समझौता कर लिया। अकबर की मन्शा थी कि राजपूतों की मदद से वह औरंगज़ेब को पदच्युत करके भारत-सम्राट् बन जाये।

तेईसवर्षीय शाहजादा अकबर राजपूतों की फौज लेकर औरंगज़ेब को परास्त करने के लिए अजमेर की ओर रवाना हुआ। महाराणा राजसिंह और दुर्गादास की पूरी मदद अकबर को मिल रही थी। लेकिन इसी बीच महाराणा की मृत्यु हो गई। इस आकस्मिक आक्रमण से अजमेर में ठहरे बादशाह की स्थिति नाजुक हो गई। उसकी फ़ौज का मुख्य भाग दूर पड़ा था और इधर अकबर की सेना में सत्तर हजार सैनिक थे। लेकिन अकबर की विलासिता और सुस्ती के कारण 200 किलोमीटर का मार्ग 15 दिनों में तय किया जा सका जो औरंगज़ेब के लिए लाभदायक हुआ। इस बीच औरंगज़ेब ने काफी फौज इकट्ठी कर ली। औरंगज़ब भी अपने बेटे अकबर से युद्ध करने के लिए आगे बढ़ा। चार किलोमीटर के फ़ासले पर दोनों सेनायें रुक गईं।

Scanned by CamScanner

औरंगज़ेब ने बड़ी चालाकी से काम लिया। अकबर के प्रधान सलाहकार तहव्वर खाँ को चुपचाप अपने शिविर में बुलवाया जहाँ उसकी हत्या कर दी गई। इस बीच औरंगज़ेब ने एक झूठा पत्र अकबर को भिजवाया जिसमें उसके इस काम की प्रशंसा की गई कि वह बादशाह के हुकुम के मुताबिक राजपूतों से मिल गया है और उनकी फौज को यहाँ तक ले आया है ताकि राजपूतों का आसानी से सफ़ाया किया जा सके। बादशाह की योजना के अनुसार वह पत्र दुर्गादास के हाथ में पहुँचाया गया।

दुर्गादास तथा अन्य राजपूतों ने उस पत्र पर तुरत विश्वास कर लिया और समझ लिया कि अकबर को बादशाह ने भेजा था और अकबर ने राजपूतों को धोखा दिया है। इसी बीच तहव्वर खाँ के शाही शिविर में जाने का भी समाचार राजपूत शिविर में फैल गया। इससे राजपूतों की आशंका पक्की हो गई। उसी रात राजपूतों ने तम्बू उखाड़े और मारवाड़ का रास्ता पकड़ा। सुबह होते ही अकबर ने पाया कि वह रणक्षेत्र में अकेला है। उसे समझ में न आया कि क्या करे। इधर बादशाह की क्रूरता थी और उधर राजपूतों का क्रोध था। लेकिन राजपूतों का क्रोध उसे बादशाह की क्रूरता के सामने हल्का जान पड़ा।

बाद में राजपूतों को अपनी ग़लती का एहसास हुआ। उनलोगों ने अकबर को शरण दी। लेकिन औरंगज़ेब की ओर से अकबर की खोज जारी थी। दुर्गादास की मदद से अकबर मराठों के राजा शंभाजी के पास पहुँचा। मेवाड़ से मुग़लों की सन्धि हो गई। राजा राजसिंह की मृत्यु के बाद उसका लड़का जयसिंह मेवाड़ का शासक हुआ, लेकिन मारवाड़ की स्थिति वैसी ही रही।

मराठा-मुगल संघर्ष

भोंसले परिवार महाराष्ट्र में बड़ा सम्मानित माना जाता था। उस युग में कुछ ऐसे वीर थे जो हथियार और योद्धाओं को एकत्रित कर अपना दल

बनाते थे और स्थानीय शासकों की सेवा कर धनोपार्जन करते थे। उन्हीं में मालोजी के पुत्र शाहजी भोंसले थे। शाहजी भोंसले का विवाह लाखजी यादव राव की पुत्री जीजाबाई से हुआ था। शाहजी पहले निज़ामशाही दरबार में रहे, फिर मुगलों के पक्ष में चले गये। बीजापुर से युद्ध किया, फिर बीजापुर के पक्ष में चले गए। अपने लिए एक रियासत भी बना ली। लेकिन ज्यादा दिनों तक वे सुखोपभोग नहीं कर सके।

शाहजी और जीजाबाई के द्वितीय पुत्र शिवाजी का जन्म शिवनेर के पहाड़ी दुर्ग में दस अप्रील 1627 ई० को हुआ। कुछ वर्षों के बाद शाहजी बीजापुर की तरफ से युद्ध अभियान में चले गये। उनके साथ उनकी प्रिय पत्नी तुकाबाई और पुत्र व्यंकोजी साथ में गये। जीजाबाई और शिवाजी दादाजी कोणदेव के संरक्षण में पूना में छोड़ दिये गये।

पति की उपेक्षा के कारण जीजाबाई का ध्यान धार्मिक कार्यों में लग गया जिसका प्रभाव शिवाजी पर भी पड़ा। इस कारण शिवाजी का झुकाव शुरू से ही माँ की ओर अधिक रहा। शिवाजी को अपने पैरों पर खड़ा होना पड़ा। युद्ध, घुड़सवारी आदि में वे निपुण हुए। शिवाजी के साथियों में सावले लोग अधिक थे जो ईमानदार, स्वतन्त्रता-प्रिय और बहादुर थे। दादा-जी कोणदेव की मृत्यु के बाद बीस वर्ष की आयु में शिवाजी स्वावलम्बी हो गये। उनके भीतर शासन और युद्ध करने की क्षमता थी। 1646 ई० में जब बीजापुर का सुल्तान लम्बी बीमारी से आक्रान्त था तो शिवाजी ने उसके तोरण दुर्ग पर अधिकार कर लिया जहाँ उन्हें प्रचुर धन मिला। उससे आठ किलोमीटर पूरब पहाड़ी पर उन्होंने राजगढ़ दुर्ग का निर्माण कराया। उसके बाद उन्होंने बीजापुर से कोंडन (सिंहगढ़) दुर्ग छीना।

शिवाजी की उद्दंडता से क्षुब्ध होकर बीजापुर के सुल्तान ने शाहजी को बन्दी बना लिया ताकि शिवाजी आत्म-समर्पण करें। कुछ शर्तों पर शाहजी मुक्त किये गये। शिवाजी कुछ दिनों तक शांत रहे। उसके बाद उन्होंने

Scanned by CamScanner

पुरन्दर दुर्ग और फिर जावली राज्य पर अधिकार कर लिया। उन्होंने प्रताप गढ़ का निर्माण कराया और वहाँ देवी भवानी की प्रतिमा स्थापित की। उन्होंने मुगलों द्वारा अधिकृत दक्षिण के क्षेत्रों में भी लूटपाट मचायी। जब बीजापुर सरकार की मुगलों से संधि हो गई तो उसका ध्यान शिवाजी की तरफ गया। बीजापुर दरबार की ओर से अफज़ल खाँ दस हज़ार अश्वारोहियों के साथ शिवाजी को दबाने के लिए भेजा गया। उसका इरादा था कि चाहे शिवाजी का वध किया जाये या उन्हें बन्दी बना लिया जाये। अफज़ल की ओर से कृष्णाजी भास्कर भेंट करने का निमंत्रण लेकर शिवाजी के पास गया। शिवाजी ने जब एकान्त में उससे अफज़ल का इरादा जानना चाहा तो कृष्णाजी भास्कर ने सच्ची बात बता दी। शिवाजी सतर्क हो गये।

प्रतापगढ़ दुर्ग के नीचे एक घाटी में अफज़ल का शानदार शिविर लगा था। दोनों तरफ से चार-चार व्यक्ति वहाँ मौजूद थे। अफज़ल तलवार और कटार से सुसज्जित था। इधर शिवाजी देखने में निरस्त्र लग रहे थे, लेकिन उन्होंने भीतर कवच धारण कर लिया था और उंगलियों में बघनखा। भीतर कटार भी छिपी थी। लम्बे-चौड़े अफज़ल खाँ ने जब आगे बढ़कर शिवाजी को गले से लगाकर उनपर कटार चलाने की चेष्टा की तो शिवाजी ने भी बघनखा के प्रयोग से अफज़ल का पेट चीर डाला और फिर कटार से आघात किया। अफज़ल की चिल्लाहट सुनकर सैयद बन्दा ने शिवाजी का पीछा किया और उनकी पगड़ी पर आघात किया। लेकिन वह मार डाला गया। इधर शिवाजी के आदमियों ने अफजल का सिर काट लिया। इशारा पाते ही शिवाजी के सैनिक अफजल के सैनिकों पर टूट पड़े। इस लूटमार में शिवाजी को 65 हाथी, चार हजार घोड़े, बारह सौ ऊँट और दस लाख रुपये प्राप्त हुए। शिवाजी ने बीजापुर के पन्हाला दुर्ग को भी जीत लिया।

सन् 1660 ई० में शाइस्ता खाँ मुगल सूबेदार बनकर दक्षिण आया। अब शिवाजी का मुकाबला मुगलों से होना था। शाइस्ता खाँ ने पूना जीत

लिया और बरसात बिताने के इरादे से पूना के दुर्ग में ठहर गया। पूना का वह लालमहल, जहाँ शाइस्ता खाँ ठहरा था, वहीं शिवाजी का बचपन बीता था। कुछ दूरी पर दस हजार सैनिकों के साथ शाइस्ता की मदद के लिए राजा जसवंत सिंह भी ठहरा हुआ था। 5 अप्रिल 1663 ई० को छद्म-वेश में, अपने चार सौ चुने हुए साथियों के साथ, रात के गहन अन्धकार में, शिवाजी पूना में प्रविष्ट हो गये। रमज़ान का महीना था जब रात में खाना खाकर शाहस्ता खाँ के सभी आदमी आराम कर रहे थे।

आधी रात को शिवाजी अपने दो सौ आदमियों के साथ महल के भीतर दाखिल हो गये। जब तक शाइस्ता खाँ स्थिति को समझे तब तक शिवाजी ने अपनी तलवार के आघात से उसका अगूँठा काट डाला। रौशनी गुल थी और चिल्लाहट बढ़ रही थी। शिवाजी के आदमियों ने बाजावालों को और भी जोर से बाजा बजाने को कहा। शाइस्ता खाँ भाग गया। उसका एक बेटा मारा गया। कई बेगमें घायल हो गईं। इस गड़बडी का लाभ उठाते हुये और मुगल फौज पर तबाही ढाते हुये शिवाजी और उनके सैनिक चुपचाप बाहर निकल गये। औरंगज़ेब ने जब शाइस्ता खाँ की इस पराजय का हाल सुना तो बहुत नाराज हुआ। शाइस्ता खाँ का तबादला बंगाल कर दिया गया।

अब शिवाजी ने सूरत शहर में लूटमार मचाकर अंग्रेज और डच कारखानों से काफी धन जमा कर लिया। यह लूटमार चार दिनों तक चली। अनेक घर जला दिये गये। शहर से सभी अमीर लोग भाग चले। सूरत शहर की लूट से शिवाजी को करीब एक करोड़ रुपये की प्राप्ति हुई। उसके बाद शिवाजी ने फौरन सूरत शहर खाली कर दिया क्योंकि उसकी सुरक्षा के लिए एक मुगल फौज पहुँचने वाली थी। औरंगज़ेब ने तब मिर्जा राजा जयसिंह को शिवाजी के खिलाफ दक्षिण भेजा। मिर्जा राजा जयसिंह की वीरता का डंका बल्ख से बीजापुर तक और कान्धार से मुंगेर तक गूंजता

Scanned by CamScanner

था। ये अब तक के सभी युद्धों में विजयी हुए थे। कूटनीति में भी उनकी कोई उपमा नहीं थी। दक्षिण-प्रस्थान के पूर्व बादशाह ने मिर्जा राजा को मुल्की और फौजी तमाम अख्तियारात दिये थे। मिर्जा राजा की उम्र उस समय 60-70 वर्ष की थी। वेनिस का सुप्रसिद्ध लेखक निकोलाओ मनूची उनके तोपखाने का अध्यक्ष था।

दक्षिण में मिर्जा राजा जयसिंह का आगमन शिवाजी की चिंता का सबसे बड़ा कारण था। सामरिक दृष्टि से जयसिंह और शिवाजी में तथा मुगल फौज और मराठा फौज में कोई समानता न थी। शिवाजी पुरन्दर दुर्ग में जा छिपे। मिर्जा राजा ने पहले वज्रगढ़ पर आक्रमण कर उसपर अधिकार कर लिया। अब पुरन्दरगढ़ पर आक्रमण आसान हो गया। जयसिंह ने लकड़ी का एक बहुत ऊंचा मंच बनवा कर उस पर तोपखाना लगवाया और पुरन्दर गढ़ पर गोलाबारी आरम्भ कर दी। शिवाजी की स्थिति चिन्ता-जनक थी।

11 जून 1665 ई० की सुबह अचानक शिवाजी जयसिंह के शिविर में पहुँच गए और आत्मसमर्पण कर दिया। पुरन्दर दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। शर्त्त के मुताबिक शिवाजी ने दक्षिण के अगले युद्ध में बीजापुर के विरुद्ध जयसिंह का साथ दिया।

राजा जयसिंह के समझाने पर शिवाजी औरंगज़ेब के दरबार में उपस्थित होने को राजी हो गये। लेकिन आगरा-दरबार में औरंगज़ेब के व्यवहार से क्षुब्ध हो गये। वहाँ वे नजरबन्द कर लिये गये। उन पर सख्त पहरा बैठा दिया गया। लेकिन अपनी चालाकी से शिवाजी छद्मवेश में आगरा से निकल भागे। साधु का वेष बनाकर वे अपने राज्य में पहुँच गये जहाँ उनका राज्याभिषेक हुआ। दक्षिण में ही मिर्जा राजा जयसिंह की मृत्यु हो गई। बाद में राजा जसवंत सिंह और शाहजादा मुअज्जम की सिफारिश पर औरंगज़ेब ने शिवाजी को 1668 ई० में राजा मान लिया। सन्धि दो वर्षों तक रही। इस बीच शिवाजी ने अपनी शक्ति मजबूत कर ली।

शिवाजी का ज्येष्ठ पुत्र शम्भाजी (शम्भू जी) अपने पिता के अनुकूल नहीं निकला। एक बार तो पिता की मर्जी खिलाफ वह मुगलों से भी जा मिला। बाद में फिर वापस आया। शिवाजी द्वारा समझाने के सभी प्रयास विफल रहे। इसी बीच 4 अप्रील 1680 ई०को चैत पूर्णिमा के दिन दोपहर में 53 वर्ष की आयु में शिवाजी की मृत्यु हो गई।

शिवाजी की मृत्यु के बाद, उत्तराधिकार के प्रश्न पर, मराठों में झंझट खड़ा हो गया। राजधानी में शिवाजी के दस वर्षीय पुत्र राजाराम का राज्यभिषेक हुआ। पन्हाला में ठहरे हुए शम्भाजी ने भी अपने को राजा घोषित कर दिया।

यह पारिवारिक कलह कुछ समय तक चला। अन्ततः शम्भाजी (शंभू जी) ने रायगढ़ पर अधिकार कर लिया और 16 जनवरी 1681 ई० को उनका विधिवत् राज्याभिषेक हुआ। इस बीच मुगलों और मराठों में छोटी-बड़ी झड़पें जारी रहीं।

अगस्त 1681 ई० में राजाराम के पक्षधरों ने शम्भाजी के विरुद्ध एक योजना बनाई, लेकिन वे सफल नहीं हुये। इस षड्यन्त्र में सम्मिलित होने के कारण राजाराम की माँ सोयराबाई को प्राणदण्ड मिला। शम्भा जी के आचरण और स्वभाव से मराठों में भारी असंतोष था। इस बीच कविकलश नामका एक व्यक्ति शम्भाजी का विश्वासपात्र बन गया। शम्भाजी को वह सुरा-सुन्दरी में लिप्त रखता।

इस बीच 22 मार्च 1682 ई० को औरंगज़ेब दक्षिण में स्वयं सैन्य-संचालन के लिए पहुँच गया। दक्षिण में तीन शक्तियों की प्रधानता थी—बीजापुर, गोलकुण्डा और मराठे। औरंगज़ेब सदा के लिए इन शक्तियों को समाप्त करना चाहता था। इसी निश्चय के साथ वह औरंगाबाद आया था। नयी रणनीति बनने लगी।

एक युद्ध के बाद जब शम्भाजी, कविकलश के साथ लौट रहा था तो संगमवेश्वर नामक स्थान पर वे लोग ठहर गए जहाँ शम्भा जी विलासक्रीड़ा

Scanned by CamScanner

में लिप्त हो गया। मराठा सैनिक राजधानी भेज दिये गये थे। शम्भा जी की असुरक्षा का लाभ उठा कर शेख निजाम ने थोड़े से सैनिक लेकर संगमेश्वर पर धावा बोल दिया। प्राणरक्षा के लिए शम्भाजी और कविकलश मकान के एक कोने में छिप गये, पर पकड़ लिये गये। बन्दी अवस्था में शम्भा जी और कविकलश बादशाह के सामने उपस्थित किये गये। उन्हें बड़ा अपमानित किया गया। शम्भाजी ने बादशाह को भद्दी गाली दी। दण्ड-स्वरूप उसकी आँखें निकाल ली गईं। कविकलश की जीभ काट ली गई। एक पखवारे की कठोर यातना के पश्चात् उनका अंग-अंग काटकर कुत्तों के सामने फेंक दिया गया। उनके कटे सिर दक्षिण के प्रमुख शहरों में घुमवाये गये।

शम्भाजी की हत्या के बाद मराठों ने उसके छोटे भाई राजाराम को कारागार से निकालकर गद्दी पर बैठाया। मुगलों के आक्रमण से डर कर राजाराम भाग गया। रायगढ़ दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया। शिवाजी, शम्भाजी और राजाराम की पत्नियाँ, पुत्रियाँ और पुत्र सभी कैद कर लिये गये। इनमें शम्भाजी का सातवर्षीय पुत्र शाहूजी भी था।

राजाराम भागता हुआ जिंजी पहुँचा, लेकिन वहाँ भी मुगलों ने उसे चैन से रहने न दिया। मराठे लोग जहाँ-तहाँ छिट-फुट रूप से लूटमार करते रहे। जिंजी में ठहरे राजाराम को मुगल फौज ने घेर लिया। वज़ीर असद खाँ ने राजाराम से सन्धि की बात चलाई। तदनुसार मुगलों ने वह स्थान छोड़ दिया।

असद के बेटे जुल्फिकार ने 1697 ई० में फिर जिंजी पर आक्रमण किया। राजाराम को दुर्ग छोड़ना पड़ा। लेकिन उसकी चार पत्नियाँ, तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ कैद कर ली गईं। एक पत्नी ने आत्महत्या कर ली। जिंजी दुर्ग पर विजय पाकर जुल्फिकार ने राजाराम का पीछा किया, लेकिन तबतक राजाराम अपने विशालगढ़ दुर्ग में सुरक्षित पहुँच चुका था। 2 मार्च 1700

ई० में ज्वर के कारण सिंहगढ़ में राजाराम की मृत्यु हो गई। उसका पुत्र सिंहासनासीन हुआ। लेकिन तीन सप्ताह में ही चेचक के कारण उसकी मृत्यु हो गई। तब राजाराम का एक अन्य 10 वर्षीय पुत्र जो ताराबाई के उदर से जन्मा था, शिवाजी तृतीय के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ।

राजाराम की बड़ी पत्नी ताराबाई ने शासन का सारा भार संभाला। राजाराम की द्वितीय पत्नी राजसबाई ने भी अपने पुत्र शम्भाजी द्वितीय का अधिकार सिंहासन पर जताया। मराठों में एक तीसरा दल भी था जो शिवाजी के पोते और शम्भाजी के पुत्र शाहूजी को सिंहासनासीन देखना चाहता था। लेकिन शाहूजी मुगलों के हरम में बन्दी का जीवन बिता रहा था। इसकी माँ का नाम येसूबाई था। बादशाह के कहने पर जब शाहू ने धर्मपरिवर्त्तन करने से इन्कार कर दिया तो उसके मुक्त होने की आशा भी जाती रही। औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद, जब सभी मुगल शाहजादे उत्तराधिकार के युद्ध में उलझ पड़े तभी शाहू मुगलों के कैद से छूट कर बाहर आ सका।

बीजापुर और गोलकुण्डा का अंत

जब मिर्जा राजा जयसिंह शिवाजी से युद्ध कर रहे थे तो उन्हें ऐसा आभास हुआ कि बीजापुर का सुल्तान चुपके से मराठों की सहायता कर रहा है। शिवाजी से फुर्सत पाते ही जयसिंह का ध्यान बीजापुर की ओर गया। मुगलों के साथ सन्धि की शर्तों के अनुसार शिवाजी को बीजापुर-आक्रमण में जयसिंह का साथ देना अनिवार्य था।

नवम्बर 1665 ई० में जयसिंह ने एक बड़ी फौज के साथ पुरन्दर से बीजापुर के लिए कूच किया। राह के सभी दुर्गों को जीतता वह आगे बढ़ता गया। इस मुगल-अभियान में शिवाजी स्वयं उपस्थित थे। बीजापुर की भी तैयारी कम न थी। गोलकुण्डा की फौज भी बीजापुर की मदद के लिए आ रही थी। शाही फौज को पीछे हटना पड़ा। इस असफल अभियान में

Scanned by CamScanner

लाखों रुपये खर्च हुए और मुगलों को कोई लाभ न हुआ। क्षुब्ध औरंगज़ेब ने जयसिंह को दरबार में वापस आने का आदेश दिया। उसकी जगह पर आ गये शाहज़ादा मुअज्ज़म और महाराजा जसवंत सिंह। हताश मिर्ज़ा राजा जयसिंह की मृत्यु राह में ही बुढ़ानपुर में 1667 ई० में हो गई।

मोहम्मद आदिलशाह के शासन काल में बीजापुर राज्य का विस्तार अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक था। वार्षिक राजस्व करीब आठ करोड़ रुपये का था। आदिलशाह द्वितीय की मृत्यु के साथ ही बीजापुर में गड़बड़ी शुरू हुई। वज़ीरों की बन आई। आपसी फूट ने बीजापुर को जर्जर कर दिया। एक-एक कर अनेक मुगल सेनापति बीजापुर-विजय का असफल प्रयास करते रहे। औरंगज़ेब ने निश्चय किया कि वह स्वयं बीजापुर जाकर मुगल नेतृत्व अपने हाथ में लेगा।

जुलाई 1686 ई० में औरंगजेब बीजापुर पहुँच गया और उसने अपनी देखरेख में हमले की योजना बनाई। सितम्बर 1686 ई० में बीजापुर का पतन हो गया। 12 सितम्बर 1686 ई० को आदिलशाही सल्तनत के अन्तिम सुल्तान सिकन्दर ने सिंहासन का परित्याग कर, औरंगज़ेब के शिविर में जा, आत्मसमर्पण कर दिया। औरंगज़ेब ने इस अन्तिम सुल्तान की सलामी क़बूल की। सुल्तान के लिए एक लाख रुपये की पेंशन स्वीकृत हुई। बीजापुर राज्य के अधिकारी और सैनिक मुगल सेवा में ले लिये गये। 19 सितम्बर को औरंगज़ेब ने बड़ी शान से बीजापुर राज्य में प्रवेश किया और शाही मस्जिद में नमाज अदा की। राजबन्दी के रूप में शाही शिविर के साथ सिकन्दर ले जाया जाता। 13 अप्रील 1700 ई० के दिन 32 वर्ष की उम्र में शाही शिविर में सिकन्दर की मृत्यु हो गई। इस तरह बीजापुर की समृद्ध सल्तनत समाप्त हो गई।

छियालिस वर्षों तक राज्य करने के बाद गोलकुण्डा के छठे सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह की मृत्यु हो गई। शासन में वह कठपुतलीमात्र था क्योंकि

सारा काम उसकी माँ हयात बख्श बेगम के इशारे पर चलता था। अब्दुल्ला की एक पुत्री की शादी औरंगज़ेब के बेटे मुहम्मद से हुई थी और दूसरी पुत्री की शादी सैयद अहमद से। तीसरी पुत्री की शादी कुतुबशाही परिवार के एक युवक अबुलहसन से हुई थी। अब्दुल्ला को कोई पुत्र न था। इसलिए उसकी मृत्यु के बाद उत्तराधिकारी के लिए झगड़ा खड़ा हुआ। उस झगड़े में विजयी हुआ अबुलहसन जो गोलकुण्डा का सुल्तान बना। दरबार दलीय संघर्ष का केन्द्र बन गया। गोलकुण्डा का दरबार नियमित रूप से दिल्ली दरबार को कर भेजा करता था।

जब राजा जयसिंह ने बीजापुर पर आक्रमण किया था तो गोलकुण्डा के सुल्तान ने बीजापुर की मदद की थी। गोलकुण्डा ने शिवाजी से भी मधुर सम्बन्ध बनाये रखा था और एक लाख 'हुन' अपने क्षेत्रों की सुरक्षा के लिए मराठों को वार्षिक दिया करता था। गोलकुण्डा का वज़ीर एक ब्राह्मण था। इन सब कारणों से औरंगज़ेब बराबर इस अवसर की ताक में था कि कब गोलकुण्डा की गर्दन ऐंठी जाये। यह बात निश्चित हो गई थी कि जब औरंगज़ेब खुद बीजापुर के विरुद्ध सैन्यसंचालन कर रहा था, उस समय भी गोलकुण्डा के सैनिक बीजापुर में मौजूद थे। औरंगज़ेब ने अपने बेटे शाहआलम को गोलकुण्डा की ओर भेजा। गोलकुण्डा में भगदड़ मच गई। सुल्तान ने सन्धि के लिए प्रार्थना की। गोलकुण्डा के हिन्दू वजीर की इसी बीच हत्या कर दी गई। 28 जनवरी 1687 ई० को बीजापुर-विजय के बाद बादशाह स्वयं गोलकुण्डा जा धमका। अबुलहसन किले में भाग गया। राजधानी हैदराबाद में भय व्याप्त हो गया।

शाहजादे शाहआलम को सुल्तान से हमदर्दी थी और वह चाहता था कि किसी तरह बादशाह और सुल्तान के बीच संधि हो जाये। औरंगज़ेब को शाहजादे शाहआलम की गतिविधियों पर संदेह हो गया। एक रात एक विशेष दावत में बादशाह ने शाहआलम को उसके चारों पुत्रों के साथ

Scanned by CamScanner

आमन्त्रित किया और सभी को कैद कर लिया। सात साल बाद बड़ी मुश्किल से शाहआलम अपने पिता की कैद से छूटा। गोलकुण्डा के युद्ध में बादशाह को कम परेशानी नहीं हुई। तूफान, भारी वर्षा और बिजली का भी सामना करना पड़ा। गोलकुण्डा का घेरा आठ महीने तक चलता रहा। हैदराबाद उजाड़ हो गया। लाशों का अम्बार लग गया। गोलकुण्डा के एक सरदार की गद्दारी के कारण दुर्ग का एक दरवाजा खुला छोड़ा दिया गया और मुगल सेनापति रुहेल्ला खाँ 21 सितम्बर 1687 ई० को किले में दाखिल हो गया। गोलकुण्डा का एक सरदार मुस्तफा खाँ अन्तिम समय तक सुल्तान के लिए लड़ता रहा। अन्त में उसने अपनी जान दे दी। गोलकुण्डा का सुल्तान अबुलहसन कैद कर लिया गया और बादशाह के सामने हाजिर किया गया। वह दौलताबाद भेज दिया गया और पचास हजार की राशि उसके लिए बैतोर पेंशन स्वीकृत की गई। गोलकुण्डा की लूट में बादशाह को साठ करोड़ रुपये नकद तथा अनगिनत जवाहरात और प्रचुर सोना-चाँदी मिली।

मनूची के कथनानुसार गोलकुण्डा के सुल्तान को बेरहमी से पीटा गया, धूप में खड़ा किया गया और तब बादशाह के सामने उसे पेश किया गया।

इस तरह बादशाह ने दक्षिण में स्वयं उपस्थित होकर मराठों को गहरी चोट दी तथा बीजापुर और गोलकुण्डा की सल्तनतों का सफाया किया। उसके जीवन का सबसे बड़ा सपना साकार हुआ। लेकिन उसकी इस महान् विजय के पीछे मुगल साम्राज्य के सत्यानाश का बीजारोपण हो चुका था। मुगलों का साम्राज्य बहुत बड़े क्षेत्र में फैल चुका था। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों में न इतनी शक्ति थी और न इतनी क्षमता कि वे खून से सींचे गये इस वृहत् भूखण्ड को शासित कर सकें और अपना दबदबा रख सकें और आगे के वर्षों में परिणाम हुआ मुगल-सम्राज्य का क्रमशः क्षय।

सतनामी और जाट विद्रोह

नारनौल के वीरभान नाम के एक व्यक्ति ने 1543 ई० में सतनामी

सम्प्रदाय की नींव डाली थी। सतनामी-सम्प्रदाय के लोग साधुओं की तरह रहते थे। इनके सिर-यहाँ तक कि भौं भी-केशविहीन होते थे। दिल्ली से लगभग 75 मील दक्षिण-पश्चिम नारनौल जिले में इनका कार्यक्षेत्र था। ये ईमानदार, वीर और सरल थे। कृषि इनकी जीविका थी। नाजायज आमदनी से ये दूर रहते थे। आपस में बड़ी एकता थी। लोग एक दूसरे के सुख-दुख में साथ देते थे।

एक बार एक सतनामी को बादशाह के एक सैनिक ने पीट दिया। सतनामियों ने जुट कर उस सैनिक की पिटाई की। बस, यहीं से उपद्रव का सूत्रपात हो गया। लोग औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता से चिढ़े तो थे ही, इस घटना ने आग में घी का काम किया। मुगल सैनिकों की छोटी-छोटी टकड़ियां इस बलवा को दबाने के लिए जाती रहीं और हर बार हार कर लौटती रहीं। जीत के कारण सतनामियों का मनोबल बहुत बढ़ गया और वे हजारों की संख्या में जुट गये। नारनौल का मुगल फौजदार परास्त हुआ और शहर सतनामियों के अधिकार में चला गया। अब सतनामियों ने शासनभार अपने हाथ में ले लिया और करवसूली भी करने लगे।

जब औरंगजेब को इस उपद्रव की सूचना मिली तो उसने दबाने के लिए दस हजार सैनिकों के साथ तोपें भी भेजीं। भयंकर युद्ध हुआ। दो हजार सतनामी युद्ध में मारे गये। इससे अधिक लोगों को खोज-खोज कर मारा गया। इस तरह इस विद्रोह का दमन हुआ।

जिन दिनों औरंगजेब दक्षिण में मराठों से उलझा था, उन्हीं दिनों जाटों ने भी मुगलों को छेड़ा था। सन् 1685 में जाटों के दो वीर नेता हुए राजाराम और रामचेहरा। ये दोनों सम्पन्न जमींदार थे जिन्होंने जाटों को युद्ध का प्रशिक्षण दिया। इन लोगों ने घने जंगलों में सुरक्षा की दृष्टि से कई दुर्ग बनाये। आगरा का सूबेदार सफी खाँ जाटों के उपद्रव को रोकने में असफल रहा। तब दिसम्बर 1687 में शाहजादा बीदरबख्त जाट उपद्रव को समाप्त करने के लिए भेजा गया। 4 जुलाई 1688 को राजाराम मारा गया।

Scanned by CamScanner

औरंगज़ेब ने जाटों के विनाश के लिए अम्बेर के राजा विष्णुसिंह कछवाहा को नियुक्त करते हुए यह आदेश दिया कि वह उनके केन्द्र-स्थल 'सिनसानी' पर कब्जा करके उसे अपनी जागीर बना ले। घने जंगलो में अवस्थित जाटों के मुकाम पर बीदरबख्त और विष्णुसिंह कछवाहा की सम्मिलित फौजों ने हमला किया। दुर्ग की दीवारें तोप से उड़ा दी गयीं। इस युद्ध में डेढ़ हजार जाट मारे गये। शाही सेना की भी काफी क्षति हुई। बचे हुए जाट इधर-उधर हो गये। कुछ दिनों तक शान्ति बनी रही।

कुछ समय के बाद जाटों का एक नया नेता पैदा हो गया। वह था राजाराम का भतीजा और भज्जा का पुत्र चुरामन। यह बड़ा योग्य और वीर व्यक्ति था। उसने जिस राजवंश की नींव डाली, वह बहुत दिनों तक भरतपुर में शासन करता रहा। इसने 1704 में "सिनसानी" पर कब्जा करके मुगलों को खदेड़ दिया। इस बीच 1707 में औरंगज़ेब की मृत्यु हो गयी और सिंहासन के लिए युद्ध शुरू हो गया। इस अवसर से लाभ उठा कर चुरामन ने जाट शक्ति काफी बढ़ा ली।

सिख-उत्कर्ष

सिखधर्म के प्रवर्तक गुरु नानकदेव जी का जन्म 1459 में लाहौर के दक्षिण-पश्चिम में स्थित तलवन्डी नामक स्थान में हुआ था। ये धार्मिक विचार के थे। साम्प्रदायिक सद्भाव, दलितों के प्रति दया और ईश्वर में आस्था इनके मत थे। इनके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेक लोग इनके इर्द-गिर्द जमा होने लगे। मुसलमान बादशाह भी गुरु नानकदेव जी तथा इनके बाद के कई गुरुओं को आदर की दृष्टि से देखा करते थे।

सिखों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव के समय में सिखमत का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। जनता के बीच सिख गुरु का सम्मान भी बढ़ गया। जहाँगीर के बेटे खुसरो ने जब अपने पिता के विरुद्ध बगावत की तो गुरु अर्जुनदेव ने उसे मदद की। खुसरो पराजित हुआ। जहाँगीर ने गुरु अर्जुन को दो लाख रुपये जुर्माना किया। जुर्माना नहीं चुकाने के जुर्म में गुरु अर्जुन को जान से हाथ धोना पड़ा।

गुरु अर्जुन के बाद गुरु हरगोविन्द सिखों के नेता हुए। शाहजहाँ के सैनिकों के साथ इनकी भी कई झड़पें हुईं। बादशाह के हुक्म से इनका मकान जब्त कर लिया गया और कई बन्दिशें लगायी गयीं। अन्त में इन्होंने कश्मीर के कीरतपुर नामक स्थान में शरण ली। यह स्थान मुगलों की नजर से दूर पड़ता था। वहीं 1645 ई० में इनकी मृत्यु हुई।

सिख गुरुओं की शृंखला में नौवें गुरु थे गुरु तेग बहादुर। आनन्दपुर इनका मुकाम था। बादशाह औरंगज़ेब की हिन्दूविरोधी नीति का इन्होंने विरोध किया। बादशाह के आदेश से इन्हें कैद कर लिया गया और दिसम्बर 1675 में इनकी हत्या कर दी गई।

ये सारी घटनायें सिखों के लिए खुली चुनौती थी। गुरु तेग बहादुर के एकमात्र पुत्र गोविन्दराय (1676-1708) सिखों के दसवें और अन्तिम गुरु हुए। गुरु गोविन्द सिंह ने समय के अनुसार सिखों में वीरता की भावना भरी और जात-पात समाप्त करके सभी सिखों को सामाजिक समानता का पाठ पढ़ाया। सैनिकों के लिए विशेष प्रकार की पोशाक का नियमन किया। यह सिखों के उत्कर्ष का काल था। मुगलों से युद्ध चल रहा था। इस अभियान में गुरु गोविन्द सिंह के चार पुत्रों की बलि पड़ी। पर गुरु गोविन्द सिंह के उत्साह में कोई कमी नहीं आई।

1707 ई० में जब औरंगज़ेब की मृत्यु हो गयी और शाहजादों के बीच उत्तराधिकार का युद्ध छिड़ा तो गुरु गोविन्द सिंह ने शाहजादे मुअज्जम का साथ दिया। युद्ध में विजयी होकर मुअज्जम बहादुरशाह प्रथम के नाम से सिंहासनारूढ़ हुआ। वह गुरु गोविन्द सिंह की बड़ी इज्जत करता था। सन् 1708 ई० में गुरु गोविन्द सिंह का प्राणान्त हुआ। इनके साथ ही सिखों में गुरुपरम्परा का अन्त हो गया।

Scanned by CamScanner

औरंगजेब के अंतिम दिन

दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के तट पर एक सुहावने गाँव देवापुर में सम्राट् औरंगज़ेब का शिविर 27 अप्रैल 1705 ई० को लगा हुआ था। बादशाह की उम्र 90 वर्ष की हो गयी थी। लगभग 24 वर्षों तक लगातार दक्षिण-प्रवास में औरंगज़ेब एक दिन भी निश्चिन्त नहीं रह पाया था। युद्ध, रक्तपात, विग्रह, सैन्य संचालन इत्यादि में वह बराबर व्यस्त रहा। इससे जो भी समय बचा, उसका उपयोग उसने आध्यात्मिक चिंतन में किया। देवापुर में ही वह गंभीर रूप से बीमार पड़ा। पहले तो वह अपने दृढ़ मनोबल की बदौलत बीमारी से जूझते हुए राजकाज करता रहा। अपने शयन कक्ष की खिड़की से झांक कर लोगों में यह विश्वास पैदा करता रहा कि वह जीवित है। बीमारी बढ़ती गई। उसके साथ ही लोगों में निराशा, चिंता और आंशका उभर आई। ऐसा लगने लगा कि उसके पुत्रों के बीच उत्तराधिकार के लिए युद्ध होने ही वाला है।

23 अक्टूबर 1705 ई० को बादशाह ने आगे बढ़ने का फैसला किया। उसकी यात्रा पालकी से हो रही थी। तीन महीने में वह अहमदनगर पहुँचा। उसे लगने लगा कि जिस साम्राज्य के विस्तार के लिए उसने सारा जीवन दाँव पर लगा दिया, वह एक भ्रम था। उसके सभी पुराने लोग खुदा के प्यारे हो चुके थे। उसका पुत्र अकबर विदेश में मर चुका था। उसकी कवयित्री पुत्री ज़ेबुन्निस। दिल्ली कारागार में दम तोड़ चुकी थी। उसकी कई संतान, पोते-पोती और विश्वासी सेनापतिगण उसके जीवनकाल में ही परलोक सिधार चुके थे। मराठों का उत्पात दिन ब दिन बढ़ता जा रहा था। मृत्युकाल में भी उसे युद्ध की व्यवस्था करनी पड़ रही थी।

औरंगज़ेब के बेटे स्थिति का लाभ उठा कर अनुशासनहीन हो रहे थे और एक दूसरे के खिलाफ बादशाह के कान में विषवमन कर रहे थे। पुत्रों में युद्ध न हो, इसके लिए उसने आजम और कामबख्श को क्रमशः मालवा और बीजापुर का सूबेदार बनाकर भेज दिया। पुत्रगण भी इस चाल से आगे बढ़ रहे थे कि वे नियुक्ति के स्थान पर न पहुचें और बादशाह के मरने की खबर मिलते ही वे जल्द से जल्द उसके मृत्युस्थल पर पहुंच सकें। सारे हिन्दुस्तान की आँखें औरंगज़ेब की सम्भावित मृत्यु पर टिकी थीं।

20 फरवरी 1707 ई० (शुक्रवार) को सुबह की नमाज पढ़कर औरंगज़ेब अपने शयनकक्ष से बाहर निकला और तसबीह पर उंगलियाँ फेरने लगा। उसके ओठ भी चल रहे थे। धीरे-धीरे वह संज्ञाशून्य होने लगा। साँस असामान्य हो गई। औरंगज़ेब का प्राणान्त हो गया। उस समय सुबह के लगभग आठ बज रहे थे। उसका ऐसा मनोबल था कि प्राणांत के बाद भी उसकी उंगलियां तसबीह पर चलती रहीं और ओठ हिलते रहे। उसकी बड़ी इच्छा थी कि उसकी मृत्यु जुमा (शुक्रवार) को हो और खुदा ने अपने इस बंदे की मंशा पूरी कर दी। औरंगज़ेब की लाश दौलताबाद के निकट खुल्दाबाद में दफन की गई। मुगलों के इस महान् शासक के इच्छानुसार एक मामूली मजार उसकी कब्र पर बनवाई गई जिसका न कोई पक्का चबूतरा था और न छत।

औरंगजेब का परिवार

इतिहास में औरंगज़ेब की चार पत्नियों के नाम मिलते हैं। दिलरास बानों शहनवाज खाँ, जो फारस के शाही खानदान से सम्बन्धित था, की पुत्री थी। दिलरास की शादी औरंगज़ेब से 8 मई 1637 ई० को हुई। उसकी मृत्यु 8 अक्टूबर 1657 ई० को हुई। इस बेगम से दो पुत्र हुए—अकबर और आजम।

Scanned by CamScanner

दूसरी बेगम का नाम रहमतुन्निसा उर्फ नवाबबाई था जो कश्मीर के रजारी रियासत के हिन्दू राजा की बेटी थी। मुहम्मद सुल्तान और मुअज्जम का जन्म इसी के गर्भ से हुआ था। 1691 ई० में दिल्ली में इसकी मृत्यु हुई।

तीसरी बेगम थी औरंगाबादी महल जो औरंगज़ेब के औरंगाबाद निवास-काल में उसके हरम में आई थी। 1688 ई० में बीजापुर में प्लेग के कारण इस बेगम की मृत्यु हो गई।

चौथी बेगम थी उदयपुरी महल जो शाहजादा कामबख्श की माँ थी। वेनिस के यात्री मनूची ने लिखा है कि उदयपुरी महल जौर्जिया से लाई गई दासी और दाराशिकोह की पत्नी थी। दाराशिकोह की हत्या के बाद औरंगज़ेब ने उदयपुरी महल को अपने हरम में ले लिया। औरंगज़ेब इसकी सुन्दरता से काफी प्रभावित था और बादशाह के अंतिम दिनों में भी यह उसके साथ थी। यद्यपि इस बेगम से उत्पन्न पुत्र कामबख्श शराबी और अयोग्य था, फिर भी औरंगज़ेब उदयपुरी बेगम के प्रभाव में आकर उसके दोषों को बराबर माफ कर दिया करता था।

इन बेगमों के अलावा एक और सुन्दरी ऐसी थी जिसने औरंगज़ेब को कुछ समय के लिए अपने रूपजाल में बाँध रखा था। औरंगज़ेब से संबंधित यही एक प्रेमकहानी मिलती है। इस रूपवती महिला का नाम हीराबाई उर्फ जैनाबादी था जो औरंगज़ेब के मौसा मीर खलील के घर में दासी थी। उस समय औरंगज़ेब दक्षिण का सूबेदार था। एक बार जब औरंगज़ेब अपने मौसा और मौसी से मिलने बुढ़ानपुर गया तो वहाँ उसने इस रूपवती महिला को देखा और फिर इसके प्रेम का शिकार हो गया। औरंगज़ेब शराब नहीं पीता था। परीक्षा लेने के लिए एक बार जब जैनाबादी (हीराबाई) ने उसे शराब दी तो ओठ तक ले गया। हीराबाई ने तत्काल प्याला औरंगज़ेब से छीनकर फेंक दिया और कहा—मेरा मकसद

आपकी मुहब्बत का इम्तहान लेना था, शराब पिलाने का नहीं और आप इस इम्तहान में खरे उतरे। दुर्भाग्य से इस सुन्दरी की अकालमृत्यु हो गई जिसका बहुत बड़ा सदमा औरंगज़ेब के दिलोदिमाग पर पड़ा।

दिलरास बानों से औरंगज़ेब को पाँच सन्तानें हुईं। पुत्री जेबुन्निसा का जन्म 15 फरवरी 1638 ई० को हुआ। इसे साहित्य से अगाध प्रेम था। स्वयं अच्छी कवयित्री थी। इसकी मृत्यु दिल्ली में 7 मई 1702 ई० को हुई। दूसरी पुत्री जीनतउन्निसा अर्थात् पादशाह बेगम थी जिसका जन्म 5 अक्टूबर 1643 ई० को औरंगाबाद में हुआ था। बादशाह के दक्षिण-प्रवास में यह बराबर उसके साथ रही। औरंगज़ेब की मृत्यु के कई साल बाद 7 मई 1721 ई० को दिल्ली में इसकी मृत्यु हुई।

तीसरी बेटी जुबदनुन्निसा का जन्म 2 सितंबर 1651 ई० को मुल्तान में हुआ था। इसका विवाह दारा की हत्या के बाद उसके द्वितीय पुत्र सिपरशिकोह से हुआ। इस शाहजादी की मृत्यु फरवरी 1707 ई० में हुई।

मोहम्मद आजम का जन्म 28 जून 1653 ई० को हुआ और जून 1707 ई० में उत्तराधिकार के युद्ध में यह मारा गया। मुहम्मद अकबर का जन्म औरंगाबाद में 11 सिम्तबर 1657 ई० को हुआ। पिता से विद्रोह करके यह फारस भाग गया और वहीं 1704 ई० में इसकी मृत्यु हो गई।

नवाबबाई से बादशाह की निम्नलिखित तीन संताने थीं :—

सबसे बड़े पुत्र मुहम्मद सुल्तान का जन्म 19 दिसंबर 1639 ई० को हुआ। बाद में बादशाह ने इसे कैद कर लिया और 3 दिसम्बर 1676 ई० को कैदखाने में ही इसकी मृत्यु हो गई।

दूसरा पुत्र मुअज्जम उर्फ शाहआलम था। उसका जन्म बुढ़ानपुर में 4 अक्टूबर 1643 ई० को हुआ था। उत्तराधिकार के युद्ध में यही विजयी हुआ

Scanned by CamScanner

और बहादुरशाह (प्रथम) के नाम से गद्दी पर बैठा। इसकी मृत्यु लाहौर में 18 फरवरी 1712 ई० को हुई।

नवाबबाई की तीसरी संतान शाहजादी बदरुन्निसा का जन्म 17 नवंबर 1647 ई० को और मृत्यु 9 अप्रील 1670 ई० को हुई। औरंगाबादी महल से औरंगज़ेब को सिर्फ एक बेटी थी। नाम था महेरुन्निसा। इसका जन्म 18 सितंबर 1661 ई० को हुआ था। इसकी शादी मृतशाहजादे मुरादबख्श के बेटे इंजिदबख्श से हुई थी। इसकी मृत्यु जून 1706 ई० में हुई। उदयपुरी महल को सिर्फ एक पुत्र था—मुहम्मद कामबख्श जिसका जन्म 24 फरवरी 1667 ई० को हुआ था। उत्तराधिकार के युद्ध में हैदराबाद के निकट तीन जनवरी 1709 ई० को यह मारा गया।

●

दूसरा भाग

Scanned by CamScanner

पिता पर अत्याचार

बीजापुर का महल। उपेक्षित मुगल शाहजादा खुर्रम अपने परिवार के साथ दुर्दिन बिता रहा था। जहाँगीर का यह दुलारा बेटा खुर्रम अपने बाप से पराजित होकर दिन काट रहा था। उत्तरी भारत में वह जाने की हिम्मत नहीं कर पाता था। उसके परिवार में उसके चार पुत्र, पुत्रियाँ और बेगमें थीं। एक बेगम को सेव खाने की तीव्र इच्छा थी। खुर्रम (शाहजहाँ) के लिए यह एक टेढ़ा सवाल था। वह घर से सेव की खोज में निकला।

रास्ते में उसे एक फकीर से भेंट हुई। फकीर ने उसकी परेशानी का कारण पूछा। खुर्रम ने उसे सब कुछ बता दिया। फकीर ने पता नहीं कैसे, तत्काल उसे दो सेव दिये। खुर्रम उस फकीर के साथ बड़ी फुर्ती से अपने निवास स्थल में लौट आया। फकीर को बाहर खड़ा किया और स्वयं अन्दर जाकर बेगम को सेव दे आया। खुर्रम को पक्का विश्वास हो गया कि वह फकीर कोई दैवी पुरुष है। वापस आकर उसने काफी श्रद्धा के साथ फकीर को बैठाया और कहा—'मुझे पूरा यकीन है कि आप कोई सिद्ध पुरुष हैं। आपने मेरी मुसीबत में मदद की है। बातचीत के सिलसिले में फकीर ने बहुत सी बातें खुर्रम को बताईं। फकीर ने यह भी कहा कि जब-जब खुर्रम बीमार पड़े, वह अपने हाथ को अवश्य सूँघें। जब तक हाथ से सेव की गन्ध आये, तबतक न तो बीमारी को खतरनाक समझना चाहिये और न उससे मृत्यु का भय है। लेकिन जब सेव की गन्ध न आये तो यह समझ ले कि अब जीवन के दिन पूरे होने को हैं। उस फकीर ने यह भी स्पष्ट कह दिया कि खुर्रम सिंहासनासीन होगा। यह सुनकर खुर्रम को बड़ी प्रसन्नता हुई।

खुर्रम ने एक और प्रश्न किया। उसने पूछा कि उसके पुत्रों में क्या कोई ऐसा भी होगा जिससे मुगल राजवंश के नाश की सम्भावना है। फकीर ने

Scanned by CamScanner

कहा—"हाँ, है।"—खुर्रम की उत्सुकता बढ़ी। उसने निवेदन किया कि क्या शाहसाहब उस पुत्र का नाम बता सकेंगे। फकीर ने कहा कि वह पुत्र 'औरंगज़ेब' है।

औरंगज़ेब का जन्म 1618 ई० में हुआ था और इस समय वह लगभग नौ वर्ष का था। फकीर की भविश्यवाणी सुनते ही खुर्रम का औरंगज़ेब के प्रति सारा स्नेह समाप्त हो गया। वह औरंगज़ेब से घृणा करने लगा, साथ ही उसे अपना शत्रु समझने लगा। औरंगज़ेब अपने सभी भाइयों में सबसे अधिक गोरा था। इसलिए खुर्रम ने उसे सफेद साँप कहना प्रारम्भ कर दिया। खुर्रम (शाहजहाँ) अपने इस तीसरे पुत्र से इतना चिढ़ गया कि उसने कई बार इसकी हत्या करा देने का प्रयत्न भी किया। लेकिन हर बार अपनी बहन रौशनआरा के कारण औरंगज़ेब बच जाता। यही रौशनआरा बाद में औरंगज़ेब की सबसे बड़ी मददगार सिद्ध हुई।

जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् खुर्रम 'शाहजहाँ' के नाम से भारत-सम्राट् हुआ। शाहजहाँ की उपाधि उसे जहाँगीर से मिली थी जब उसने मेवाड़ विजय की थी। शाहजहाँ अपने तीसरे बेटे औरंगज़ेब से बराबर सावधान रहता था। सम्राट् होने के बाद एक बार शाहजहाँ को कन्दहार-विजय के सीमान्त प्रदेशों में जाना पड़ा। औरंगज़ेब उसके साथ था। शाहजहाँ के सामने एक भिखारी उपस्थित हुआ। शाहजहाँ उसे कुछ देना चाहता था। औरंगज़ेब ने उसे रोक दिया और कहा कि इस भिखारी के पास सोने की मुहरें हैं और ऐसे व्यक्ति को कुछ देना मजहब से वर्जित है। शाहजहाँ ने तुरत उस आदमी की खानातलाशी कराई। उसके पास सचमुच सोने की मुहरें निकलीं। थोड़ी देर के लिए सम्राट् अपने बेटे की पैनी नजर को मान गया। बाद में पता चला कि सम्राट् का मन जीतने के लिए औरंगज़ेब ने ही इस नाटक का सूत्रपात किया था। औरंगज़ेब अपनी योग्यता और मजहबी ज्ञान का प्रदर्शन कर अपनी पदोन्नति चाहता था। लेकिन शाहजहाँ किसी भी तरह प्रभावित नहीं हो पाता था।

शाहजहाँ के चारों पुत्रों में भयंकर वैमनस्य था। सब एक दूसरे से जलते थे। शाहजहाँ से उनकी मनोवृत्ति छिपी न थी। दरबार में किसी दिन इन लोगों की उपस्थिति से कोई भीषण दुर्घटना न हो, इसलिए उसने आदेश दिया कि उससे बारी-बारी से एक ही शाहजादा एक रोज मिले। सिलसिला कुछ दिनों तक ठीक रहा।

शाहजहाँ अपने बड़े पुत्र दारा को अधिक मानता था। यह बात औरंगज़ेब के लिए असह्य थी। एक रोज औरंगज़ेब घोड़े पर सवार होकर निकला उसके हाथ में एक लम्बा बर्छा था। वह किले से दारा के निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। दारा को देखते ही उसने वेग से घोड़ा दौड़ाया। परिणाम यह हुआ कि दारा की पालकी औरंगज़ेब के घोड़े से टकरा गई। पालकी गिरते-गिरते बची। दारा ने इस दुर्घटना का जिक्र शाहजहाँ से किया।

शाहजहाँ ने तय किया कि चारों शाहजादों को अलग-अलग कर दिया जाये। औरंगज़ेब ने अपने बड़े लड़के सुल्तान मुहम्मद का विवाह अपने दूसरे भाई शुजा की लड़की से ठीक किया था। शाहजहाँ इस बात को जानता था। लेकिन उन दोनों को एक होने देने के पक्ष में नहीं था। ज्येष्ठ पुत्र दारा को उसने अपने पास रखा। दूसरे पुत्र शुजा को बंगाल का सूबेदार नियुक्त किया, तीसरे पुत्र औरंगज़ेब को मुल्तान का सूबेदार बना कर भेजा और चौथे पुत्र मुराद को गुजरात का शासक नियुक्त किया।

औरंगज़ेब अच्छी तरह जानता था कि शाहजहाँ उससे रंज रहता है। वह अपने पिता के पास बड़ी मिन्नत से पत्र भेजता, दारा के लिए उन पत्रों में खुदा से दुआयें माँगता, अपने दोषों के लिए बाप से क्षमा-याचना करता, अपनी सेवा और अपने परिवार की सेवा शाहजहाँ के लिए अर्पित करता, पिता की अनुकम्पा की भीख माँगता। कभी-कभी दारा के पत्रों में उसकी खूब प्रशंसा करता और पिता की तरह उसे पूज्य मानता। दारा दयावान था और उत्तर में भाई की मंगल-कामना करता था। जब औरंगज़ेब ने दारा पर

Scanned by CamScanner

अपने जादू का प्रभाव डाल दिया तो निवेदन किया कि मुल्तान की आबोहवा उसके स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं अतः पिता से कह-सुन कर वह उसे मुल्तान से तबादला कराकर दक्षिण भेज दे।

इसके भीतर भी औरंगज़ेब की चाल थी। दक्षिण में वह अपना प्रभाव जमा सकता था तथा बीजापुर और गोलकुंडा राज्यों से अपने स्वार्थ की सिद्धि कर सकता था। दारा ने उसकी पैरवी अपने पिता से की। शाहजहाँ ने औरंगज़ेब का तबादला दक्षिण कर दिया, लेकिन दारा को साबधान कर दिया कि वह एक जहरीले साँप की मदद कर रहा है, वह साँप उसे कभी भी डँस सकता है।

औरंगज़ेब दक्षिण चला गया। दौलताबाद के निकट उसने औरंगाबाद नामक शहर की नींव डाली और वहीं से वह अपने पिता और भाइयों के विरुद्ध कुचक्र रचने लगा। दक्षिण में रहकर उसने राजनीति के अजीब-अजीब दाँव खेले। काफी दौलत इकट्ठी की और भावी युद्ध के लिए एक सुसंगठित सेना तैयार की। अब वह उस दिन की प्रतीक्षा करने लगा जब उसे सबसे महत्त्वपूर्ण बाजी लगानी थी।

सितम्बर 1657। दिल्ली शहर में बड़ी अशान्ति थी। शाहजहाँ को मूत्ररोग उत्पन्न हो गया था और हालत नाजुक हो चली थी। सभी इलाज व्यर्थ गये। शाहजहाँ को फकीर की वाणी याद थी। उसने हाथों को सूँघा। कोई महक न मिली। वह समझ गया कि वह अब उठ न सकेगा। शाहजहाँ की बीमारी की खबर छिपाये न छिपी। तीनों पुत्र आगरे की तरफ दौड़ पड़े। शुजा पराजित होकर पीछे लौट गया। औरंगज़ेब ने मुराद को अपनी ओर मिला लिया। दारा पराजित होकर भाग गया। औरंगज़ेब ने अपने बाप को आगरे के किले में कैद कर लिया। औरंगज़ेब ने बाद में मुराद को भी कैद कर लिया। अब उसके लिए मैदान साफ था।

औरंगज़ेब अब मुगल तख्तोताज का मालिक था। सिंहासनारूढ़ होते ही औरंगज़ेब ने अपने को वीतराग एलान किया और बताया कि शासन में

सुधार लाने के लिए उसे ऐसा करना पड़ा। प्रारम्भ में कैदी शाहजहाँ और औरंगज़ेब के बीच लम्बा पत्राचार चला। औरंगज़ेब ने अपने पिता को अन्याय, लापरवाही, दुराचार, फजूलखर्ची आदि के लिए दोषी ठहराया। शाहजहाँ ने उस दशा में भी अपने पत्रों में औरंगज़ेब को फटकारा। लिखा कि जिस व्यक्ति ने अपने पिता के विरुद्ध बगावत की, जो अपने भाइयों के प्रति क्रूर रहा, जिसने इतने व्यक्तियों का रक्तपात किया, अपने पुत्र को भी जिसने न छोड़ा, वह कभी राज्य को सुचारू रूप से नहीं चला सकता। शाहजहाँ के पास बन्दी दशा में भी कीमती हीरे जवाहरात थे। औरंगज़ेब ने माँग की। शाहजहाँ ने उत्तर भिजवाया कि वह हीरे जवाहरात के टुकड़े-कर देगा, पर उसे देगा नहीं। औरंगज़ेब चुप हो गया।

इस बीच औरंगज़ेब बीमार हो गया। ठीक होने पर हकीमों ने राय दी कि स्वास्थ्य सुधार के लिए उसे कश्मीर जाना चाहिये। लेकिन औरंगज़ेब के मन में बराबर भय बना था कि शाहजहाँ जीवित है और कहीं भी जाना उसके लिए महँगा सिद्ध हो सकता है। शाहजहाँ मरता नहीं था, इसका औरंगज़ेब को बड़ा मलाल था। उसने हुक्म दिया कि जिस खिड़की के पास बैठकर शाहजहाँ यमुना की जलधारा को देखता है, उसे बन्द किया जाये। शाहजहाँ के आरामकक्ष के निकट बन्दूकधारियों को नियुक्त किया गया कि वे फिजूल में गोलियाँ चलाकर शाहजहाँ के आसपास के वातावरण को अशान्त रखें, यदि शाहजहाँ किसी प्रकार उनकी ओर देखे तो वे उसे गोली मार कर किस्सा खत्म कर दें। लेकिन शाहजहाँ को अभी जीवित रहना था। इन सबके बावजूद वह शान्त बना रहा।

शाहजहाँ के हकीम का नाम मोकर्रम खाँ था। औरंगज़ेब ने अपने एक विश्वासी आदमी फहीम के द्वारा उसके पास विष भेजा। आदेश था कि हकीम शाहजहाँ को विष देकर मार डाले। मोकर्रम जानता था कि यदि वह औरंगज़ेब की आज्ञा का उल्लंघन करेगा तो उसे कुत्ते की मौत मरनी होगी। यह भी जानता था कि विष देने पर भी औरंगज़ेब उसके प्राण लेकर

Scanned by CamScanner

इस रहस्य को छुपाने की चेष्टा करेगा। वह उसके स्वभाव से पूर्णरू से परिचित था। उसने हर तरफ से अपनी मृत्यु देखी। उसने शाहजहाँ को विष नहीं दिया। रात को सोने के समय उसने खुद उस विष को खा लिया। दूसरे दिन औरंगज़ेब ने हकीम की मृत्यु का हाल सुना। लेकिन उस पर कोई असर न पड़ा।

बाद में औरंगज़ेब ने एक यूरोपियन डाक्टर को विष देने के लिए तैनात किया। लेकिन शाहजहाँ ने उस डाक्टर की सेवा स्वीकार नहीं की। निदान उसी डाक्टर के द्वारा औरंगज़ेब ने खलीलुल्ला खाँ को विष देकर मरवाया। औरंगज़ेब के अत्याचार की कहानी फैल रही थी। असन्तोष की आग भड़क रही थी। औरंगज़ेब ने अब अपना रंग बदला। बार-बार पत्र देकर अपने बाप से माफी मांगने लगा। कभी-कभी शासन के पेचीदे मामलों पर पत्र के द्वारा राय लेने लगा। धीरे-धीरे असहाय शाहजहाँ भी औरंगज़ेब के प्रति नर्म होने लगा।

1 फरवरी 1666 अर्थात् 26 रजब 1076। रविवार की रात। 74 वर्ष की उम्र में शाहजहाँ की मृत्यु हो गई। वह इस सांसारिक संकट से सदा के लिए मुक्त हो गया। औरंगज़ेब को अब भी बाप की मौत में शक था। औरंगज़ेब के आदेश से एक विश्वस्त आदमी ने लोहे की छड़ को गर्म कर शाहजहाँ के शरीर से स्पर्श कराया ताकि यह पता चल सके कि वह जिन्दा तो नहीं है। औरंगज़ेब को इतने पर भी विश्वास नहीं हुआ। उसने आदेश भेजा कि जबतक वह स्वयं न पहुँचे तब तक शाहजहाँ को दफन न किया जाये।

औरंगज़ेब आगरे पहुँचा। ताजमहल के निकट अपने पिता के शव की प्रतीक्षा करने लगा। शाहजहाँ का शव आगरे के महल के द्वार से बाहर नहीं लाया गया। महल की एक दीवार में सुराख बना कर लाश बाहर लाई गई। कब्र के निकट जब शव लाया गया तो औरंगज़ेब ने काफी श्रद्धा दिखाई, अपनी आँखें पोछीं। शाहजहाँ का शव कब्र में डाल दिया गया।

शाहजहाँ के लिए जिस समय कब्र खुदा जा रहा था, उस समय एक हाथी जिसका नाम 'खालिकदाद' था भड़क उठा। यह शाहजहाँ का प्यारा हाथी था। फिलवान ने कहा—"खालिकदाद, तू बदनसीब है। तेरा मालिक तो खुदा का प्यारा हो गया। अब तुम्हें कौन पूछेगा?"—पता नहीं, इन शब्दों में कैसा जादू था। हाथी अशान्त हो उठा। सूंढ़ से गर्द उठाकर वह अपने सिर पर डालने लगा। फिर चिग्घाड़ते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ा और थोड़ी ही देर में उसकी मृत्यु हो गई।

जो लोग वहाँ उपस्थित थे, वे मन ही मन सोचने लगे कि उस हाथी और औरंगज़ेब में कौन कैसा है।

बड़े भाई की हत्या

दारा और औरंगज़ेब की सेनायें एक दूसरे के सामने खड़ी थीं। दारा समूगढ़ के युद्ध में पराजित हो चुका था और अब नई फौज के साथ अपने भाई औरंगज़ेब का सामना करने के लिए तत्पर था। औरंगज़ेब दारा के साहस से अभी भी भयाकान्त था। उसने एक चाल चली। अपने सेनापति दिलेर खाँ को दारा की फौज में भेजा।

दिलेर खाँ ने दारा के सामने औरंगज़ेब की काफी शिकायत की और पूरी मदद का आश्वासन दिया। उदार दारा उसकी बातों में आ गया। तय हुआ कि दूसरे दिन औरंगज़ेब पर हमला किया जाये।

औरंगज़ेब की फौज में उजबेक जाति का एक नामी ज्योतिष था। नाम था कुतुबबेग। उसने औरंगज़ेब को कहा कि अगले दिन के सितारे कह रहे हैं कि युद्ध में उसके किसी ऐसे आदमी का मरण होगा जो सर्वोच्च स्थान न ले। औरंगज़ेब ने अपने सेनापतियों से राय ली। औरंगज़ेब के एक उस्ताद शेख मीर ने प्रस्ताव रखा कि शाही हाथी पर उसे सवार होने का सौभाग्य प्रदान किया जाये। औरंगज़ेब के लिए वह प्राण न्योछावर करने को तैयार था। औरंगज़ेब ने अपनी स्वीकृति दे दी।

Scanned by CamScanner

सजे हाथी पर सवार शेख मीर युद्ध में आया। सभी लोगों ने समझा कि यही औरंगज़ेब है। भीषण युद्ध में शेख मीर दारा के एक सैनिक की गोली से मारा गया। शेख मीर के पास ही मीर तकी नाम का एक व्यक्ति था। उसने बड़ी तत्परता दिखाई। शेख मीर की एक बाँह उठाकर वह सैनिकों में यह विश्वास भरता रहा कि नायक जिंदा है। इससे औरंगज़ेब की फौज का हौसला बना रहा।

दारा को शायद कुछ हद तक सफलता मिल जाती। इसी बीच दिलेर खाँ ने अपना काम प्रारम्भ कर दिया। उसके सैनिक दारा के सैनिकों को काटने लगे। दारा की सेना में भयानक गड़बड़ी फैल गई। दिलेर खाँ के विश्वासघात के कारण अजमेर के युद्ध में दारा की हार और औरंगज़ेब की जीत हुई। दारा भाग निकला। दिलेर खाँ ने उसके सारे फौजी सामान लूट लिये। औरंगज़ेब ने राजा जयसिंह और बहादुर खाँ को आदेश दिया कि वे दारा का पीछा करें और जिन्दा या मुर्दा उसे बन्दी बना लें।

गुजरात का सूबेदार शाहनवाज खाँ औरंगज़ेब का श्वसुर था। लेकिन गर्दिश के दिनों में जब दारा गुजरात पहुँचा था तो शाहनवाज ने औरंगज़ेब की परवाह किये बिना उसे पूरी मदद की थी। अजमेर के युद्ध में शाहनवाज दारा की ही ओर से लड़ा था। जब दारा पराजित होकर भाग निकला तो शाहनवाज अकेला पड़ गया। एक वृक्ष के नीचे दरी बिछा कर विश्राम कर रहा था। औरंगज़ेब ने दिलेर खाँ को आदेश दिया था कि वृद्ध शाहनवाज को ढूँढ़ कर वह उसका काम तमाम कर दे। दिलेर खाँ ने थके शाहनवाज को देखा और अविलम्ब तीर चला कर शाहनवाज को मार डाला।

दारा गुजरात की ओर बढ़ा। गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में औरंगज़ेब का आदेश पहले ही पहुँच चुका था कि दारा को शरण न दी जाये। भाग्यहीन दारा सिन्ध के रेगिस्तान में चक्कर काटने लगा। भोजन और पानी के अभाव और भीषण गर्मी के कारण दारा के दल में हाहाकार होने लगा। उसके पीछे राजा जयसिंह और बहादुर खाँ की फौज चली आ

रही थी। इसी बीच रेगिस्तानी लूटेरों ने दारा के बचे खुचे सामान छिन लिये तथा अनेक लोगों को मार डाला। दारा के पास रुकने के लिए समय न था। मौत उसका पीछा कर रही थी। किसी तरह उसने नदी पार किया। उस समय उसके पास दो हजार सैनिकों में से कुल पाँच सौ बच रहे थे। शेष मारे गये थे, या भाग गये थे।।

दारा अब हिन्दुस्तान छोड़ कर फारस की राह पकड़ना चाहता था। लगभग डेढ़ सौ साल पहले उसका पूर्वज हुमायूँ इसी दुर्भाग्य के चक्र में पड़ा था और उसको तख्तोताज हासिल करने के लिए फारस से ही मदद मिली थी।

मुगल-साम्राज्य के इस छोर पर मलिक जीवन (जीवन खाँ) के इलाके थे। इस व्यक्ति को दारा ने तीन बार शाहजहाँ के कोप से बचाया था। इसलिए दारा को आशा थी कि जीवन खाँ उसकी सहायता करेगा। जीवन खाँ ने सोचा कि यदि दारा को पकड़ कर औरंगज़ेब के हवाले कर दिया जाये तो उसे पुरस्कार मिलेगा। उसने दारा का स्वागत किया और उसके चारो ओर अपने सैनिकों को बैठा दिया। दारा के साथी उससे अलग कर दिये गये।

दारा के साथ उसकी पहली पत्नी नूरमहल बेगम (नादिरा बानो) थी। यह बादशाह जहाँगीर के बेटे परवेज की लड़की थी। साथ में दारा का छोटा बेटा सिपरशिकोह और सुन्दरी कन्या "जानी बेगम" थी। नूरमहल अपने शौहर की मृत्यु के पहले मर जाना चाहती थी। उसकी अंगठी में विष था। एक बार ज्योंहि वह विष को अपने ओठों से लगाने जा रही थी उसके दास फरीदन ने देख लिया और बेगम को रोक लिया।

फरीदन ने जीवन खाँ की दुष्टता समझ ली और उसने तय किया कि वह स्वयं उसकी हत्या करेगा। जीवन खाँ आराम से बैठा था। फरीदन ने उससे निवेदन किया कि दारा ने कुछ जवाहरात भेजे हैं। देने के बहाने इसने हाथ इधर-उधर किया और झट पिस्तौल निकाल कर चला दिया। जीवन

Scanned by CamScanner

खाँ का प्राणान्त हो जाता, लेकिन फरीदन का निशाना चूक गया। जीवन खाँ के सैनिकों ने फरीदन को पकड़ लिया। जीवन खाँ को विश्वास हो गया कि दारा ने ही उसकी हत्या का आयोजन किया है। अब वह और भी अधिक क्रूर हो गया। उसने दारा को परिवार के साथ कैद करके अलग रख दिया।

नूरमहल बेगम ने फरीदन का हाल सुना तो वह और भी सशंकित हो उठी। उसने संकट के दिनों में दारा का साथ न छोड़ा था, लेकिन अब जीवन धारण करना उसके लिए सम्भव नहीं था। उसने विषपान कर लिया। मरते समय उसने कहा—"मेरे सरताज! मेरे बच्चे! अब तुम्हारी मुसीबतों की चरम सीमा है। औरंगज़ेब तुम्हारे रक्त से अपनी पिपासा तृप्त करेगा। मैं वैसे वक्त को देखने के लिए जीवित रहना नहीं चाहती। क्या मैं पति या बच्चों को खोकर रह सकूँगी? क्या मैं औरंगज़ेब की रखैल बन कर गैरत की जिन्दगी जी सकूँगी?"—विषपान करते ही उसके चेहरे का रंग स्याह हो गया। सभी लोग दौड़ पड़े। बच्चे बिलख-बिलख कर रोने लगे। भाग्यहीन दारा किंकर्त्तव्यविमूढ़ अपनी पत्नी की लाश के पास खड़ा आँसू बहाता रहा।

उसी समय दरवाजे पर दस्तक पड़ी। दारा को किसी ने सूचना दी कि राजा जयसिंह और बहादुर खाँ की फौज ने मकान घेर लिया है। दारा ने निश्चय कर लिया कि उसे मुगलों की इस विशाल सेना से अकेले युद्ध करना है। उसने हाथ में तलवार ली और आगे बढ़ा। दरवाजा टूट चुका था और बहादुर खाँ ने उच्च स्वर में आदेश दिया—इसे कैद कर लो।—दारा कैद कर लिया गया।

दारा के पैरों में लोहे की बेड़ी और हाथों में हथकड़ी डाल दी गई। चार हाथी लाये गये। हाथी पर हौदे थे। प्रत्येक हाथी के साथ तीन-तीन हजार सैनिक थे जो तलवार और बर्छे से लैस थे। इन चारो हाथियों पर दारा और उसके परिवार के लोग बैठाये गये। इसे काफी गुप्त रखा गया कि दारा को किस हाथी पर बैठाया गया है। प्रत्येक हौदे पर एक सैनिक नंगी

तलवार लिये बैठा था ताकि यदि किसी प्रकार का बलवा हो या कैदियों को छुड़ाने का प्रयत्न किया जाये तो उसके पहले ही ये कैदी को दुसरी दूनिया में भेज दें। फौज के आगे-आगे राजा जयसिंह था और सबसे पीछे बहादुर खाँ। ये लोग भक्कर के दुर्ग की ओर चले। भक्कर का किलेदार दारा का ईमानदार नौकर था और वह प्राण देने को तैयार था, पर औरंगज़ेब की सेना को किले में घुसने देने के लिए तैयार न था। दारा उसकी ईमानदारी पर रो पड़ा। मुकाबला व्यर्थ था। इसलिए उसने अपने हाथ से एक रुक्का लिखकर किलेदार को आत्मसमर्पण करने के लिए कहा। किलेदार ने आज्ञा का पालन किया।

इस बीच औरंगज़ेब ने आदेश दिया कि बन्दी दारा को दिल्ली लाया जाये। चालीस दिनों की यात्रा के बाद बन्दी दारा के साथ जयसिंह और बहादुर खाँ दिल्ली पहुँचे। औरंगज़ेब का आदेश था कि दारा को हाथी के खुले हौदे में, उसके बेटे सिपरशिकोह के साथ बैठा कर, शहर में लाया जाये, पीछे एक आदमी नंगी तलवार लिये बैठा हो। इस तरह दिल्ली में अभागे दारा का प्रदर्शन हुआ। दारा के हाथी के साथ-साथ बहादुर खाँ का हाथी चल रहा था। चारों ओर तीर धारण किये सैनिक थे।

दारा के पैर बँधे थे, पर हाथ खुले थे। इस भाग्यहीन शाहजादे को देखने के लिए सड़कों पर भीड़ लगी थी। जब दारा का हाथी गुजर रहा था, तब एक फकीर सामने आया और उच्च स्वर में बोला—'दारा, जब तुम मालिक थे तो मैं तुम्हारे दरवाजे से कभी खाली हाथ नहीं लौटता था। लेकिन मैं जानता हूँ कि आज तुम्हारे पास देने के लिए कुछ नहीं है।"—दारा के शरीर पर एक मैली चादर थी। उसने फौरन उस फकीर की तरफ अपनी चादर फेंक दी। बहादुर खाँ ने देख लिया और उसके आदेश से फकीर से वह कपड़ा छिन लिया गया। फकीर जीवन खाँ को उसकी हरकतों के लिए गाली दे रहा था। जीवन खाँ भी उस समय भीड़ में मौजूद था।

Scanned by CamScanner

महल के सामने दारा का हाथी खड़ा हो गया। बदनसीब दारा औरंगज़ेब के फैसले की प्रतीक्षा कर रहा था। औरंगज़ेब चाहता था कि दारा को उसके सामने लाया जाये। लेकिन शाइस्ता खाँ ने उसे मना कर दिया। फैसले का इन्तजार करने के लिए दारा को शहर के बाहर, यमुना नदी के तट पर खिजिराबाद (खवासपुरा या हवासपुरा) भेज दिया गया। औरंगज़ेब ने अपने मुसाहिबों से दारा के बारे में पूछा कि क्या किया जाये। मुसाहब औरंगज़ेब के इरादे को पढ़ चुके थे। सबों ने दारा की हत्या की राय दी। औरंगज़ब तो यही कहलाना चाहता था। उसने खालिस खाँ को आदेश दिया कि सिपरशिकोह को दारा के निकट से हटा कर ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया जाय।

दारा का अन्तिम सहारा भी चला गया। उमने अनुमान कर लिया कि अब उसके दिन गिने हुए हैं। औरंगज़ेब ने दारा के लिये मौत का आदेश दिया। नज़रबेग ने दारा के सिर काटने का ज़िम्मा लिया।

खिज़िराबाद के एक मकान में दारा बेचैनी से टहल रहा था। शाम सात बजे का समय था। अचानक "नज़रबेग" अपने आदमियों के साथ घुसा और दारा पर टूट पड़ा। दारा को जमीन पर पटक दिया और बड़ी बेरहमी से उसका सिर काट लिया। रक्त से लथपथ सिर को लेकर ये जल्लाद औरंगज़ेब की सेवा में उपस्थित हुए। बाग में औरंगज़ेब उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

औरंगज़ेब ने आदेश दिया कि रक्त को धोकर तथा पगड़ी पहना कर दारा का सिर एक तश्तरी में रखकर उसके सामने लाया जाये। ऐसा ही किया गया। औरंगज़ेब को अब भी दारा की हत्या में सन्देह था। उसने रौशनी मँगाई और दारा के ललाट पर के एक पुराने दाग को देखकर अपने को सन्तुष्ट किया। फिर उसने कटे सिर को पृथ्वी पर रखवाया, अपनी तलवार से तीन ठोकर मारी तथा व्यंग से बोला 'देखो, यही हिन्दुस्तान का होने वाला बादशाह है। इसे मेरी नजरों से दूर हटाओ।'

औरंगज़ेब का मन इतने से भी नहीं भरा। आगरे के दुर्ग में नज़रबन्द शाहजहाँ भोजन करने के लिए बैठा था। इतबार खाँ एक बड़ी थाल के साथ उपस्थित हुआ। उसने कहा कि औरंगज़ेब ने यह भेंट आपकी सेवा में भेजी है। थाल पर बेशकीमती कपड़ा था। शाहजहाँ थोड़ी देर के लिए औरंगज़ेब पर प्रसन्न हो गया और उसने कपड़े हटाने को कहा।

कपड़े के हटते ही शाहजहाँ ने जो कुछ देखा, उससे अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। वह चीख कर बेहोश हो गया। थाल में दारा का कटा सिर था। जहानारा बेगम भी बेहोश थी। सभी उपस्थित लोग दारा की इस दर्दनाक हत्या से दुखी थे। उस भाग्यहीन शाहजादे का सिर ताजमहल में और धड़ हुमायूँ के मकबरे में दफनाया गया।

रक्त की भेंट

यमुना नदी के तट पर स्थित दिल्ली के लालकिले के एक कमरे की खिड़की के खुलते ही प्रकाश बाहर फैल गया। खिड़की के पास एक स्त्री खड़ी थी जो खोई नजरों से यमुना नदी की ओर देख रही थी। पानी कल-कल निनाद करता बह रहा था। कुछ नावें जा रही थीं—बिलकुल खामोश। महल के अन्य लोग सो गये थे। कमरे के द्वार पर तातारी रमणियाँ नंगी तलवार लिये पहरा दे रही थीं। उस नारी की आँखों की नींद हमेशा के लिए खत्म हो गयी थी। दिन रात उनमें आँसू भरे रहते थे। कुछ ही रोज पहले वह सुनहरे स्वप्न देख रही थी—हिन्दुस्तान के भावी सम्राट् की दिल-रुबा होने के मधुर सपने। लेकिन अचानक वे सपने टूट गये। आज वह इस विशाल महल में—सम्राट शाहजहाँ के बनाये लालकिले में—कैद है। उसे मरने की भी छूट नहीं है। काश वह उस खिड़की से बाहर जा पाती और यमुना के जल में डूब पाती। उसे लगता था, मानो शृंगार के सभी साधनों से युक्त यह कक्ष साँप की तरह उसे डँसने को तैयार हो, मानो यह भयानक रौशनी उसके हाहाकार की अग्नि को और भी प्रज्वलित कर रही हो।

Scanned by CamScanner

बरसों पहले उसे एक बार सम्राट् शाहजहाँ के सामने नृत्य करने का अवसर मिला था। वह फूली नहीं समा रही थी। उसे यह पता चल गया था कि उस महफिल में सम्राज्ञी मुमताजमहल और सम्राट् के ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह भी रहेंगे। शाहजादा दारा! उसकी नसों में बिजली की गति आ गयी। दारा के सौंदर्य की कहानी दिल्ली के घर-घर में सुनी जाती थी। क्या वह दारा पर विजय पा सकती है? सारी बुद्धि और सारी कला उसने उस नृत्य में डाल दी। उस रोज दीवानेखास में सचमुच स्वर्ग की एक अप्सरा उतर आयी थी।

रत्नजटित मोरसिंहासन पर सम्राट् शाहजहाँ विराजमान थे। उनके पास ही शाहजादा दारा थे। नर्तकी के पैर पृथ्वी पर पड़ते ही न थे। नर्तकी का चेहरा झीने वस्त्र में छिपा था। नर्तकी ने दारा पर दृष्टिपात किया। अचानक चेहरे पर का वस्त्र हट गया। दारा और नर्तकी की नजरें मिलीं। नर्तकी विजयगौरव के साथ अपने घर लौटी। सम्राट् शाहजहाँ की तीक्ष्ण दृष्टि से यह सब छिपा न था।

दूसरे दिन शाहजहाँ के सामने नर्तकी की पेशी हुई। वहाँ तीसरा और कोई न था। नर्तकी भयकम्पित थी। शाहजहाँ ने पुकारा—

"दिल।"—"दिल" की धड़कन जैसे रुक गयी।

"जहाँपनाह।"

"तुम्हारी गुस्ताखी माफी के लायक नहीं है।"

"कैसी गुस्ताखी जहाँपनाह?"

"तुम शाहजादे पर डोरे डाल रही हो। यह हमसे छिपा नहीं है। याद रखो कि वह हिन्दुस्तान का होनेवाला बादशाह है। तुम उसे गुमराह करने की कोशिश न करो। अब तुम जा सकती हो।"

नर्तकी कुछ कहना चाहती थी। लेकिन तब तक सम्राट् जा चुके थे। "दिल" जीती बाजी हार गयी।

कुछ दिन बीत गये। शाहजादा दारा का स्वास्थ्य गिरने लगा। वे शासन के काम में भी कुछ हल्के पड़ गये। दारा की बेगम "नादिराबानो" पति को अपने प्राणों से अधिक चाहती थी। लेकिन बेगम को भी शाहजादे की गिरती सेहत के कारण का पता न चला। दारा ने खाट पकड़ ली। हकीम हार गये। नादिरा अपने सुहाग के लिए खुदा से मिन्नत करने लगी। शाहजहाँ चिन्तित हो उठे। शाहजादा अपने दुख-दर्द के बारे में किसी से कुछ कहना न चाहते थे। सम्राट् ने गम्भीरतापूर्वक विचार किया तो आशा की एक किरण सामने चमक उठी।

सम्राट् के आदेश से नर्तकी "दिल" शाहजादे के पास लायी गयी। सूखती फसल पर बारिश की फुहार गिरी। धीरे-धीरे शाहजादे ने स्वास्थ्य लाभ किया। इसका श्रेय नर्तकी को था। इस बार भारत-सम्राट् शाहजहाँ की हार हुई और नर्तकी हारी हुई बाजी जीत गयी। नादिराबानो ने दारा की मनोव्यथा समझ ली थी। उसने बादशाह से अर्ज किया कि शाहजादे की शादी उस नर्तकी से कर दी जाये। लाचार बादशाह ने अपनी स्वीकृति दे दी। नर्तकी "दिल" अब "रैनादिल बेगम" कहलाने लगी।

शाहजादा दारा इस नयी बेगम पर जी जान से मोहित थे। नर्तकी अब अपने नये पद के अनुकूल रहने लगी। दारा इसे बहुत मानते थे। "नादिरा-बानो" के त्याग और पतिपरायणता के कारण दारा उसे देवी की तरह मानते थे। साथ ही "दिल बेगम" के सौन्दर्य और शालीनता को भी वे इस मर्त्य-लोक की एक बड़ी उपलब्धि समझते थे।

आगरे के विशाल दुर्ग में "रैनादिल बेगम" कुछ गुनगुना रही थी। बाँदी ने आकर खबर दी कि शाहजादेआलम आ रहे हैं। बेगम चौंक पड़ी। यह तो उनके आने का वक्त न था। वह उनके लिए आसन ठीक करने लगी। इतने में शाहजादा दारा भीतर आ गये। उनके चेहरे पर ग़म के बादल छाये थे।

Scanned by CamScanner

"हुजूर, आज मुझसे कोई खाता हुई है क्या ?"

"नहीं दिल।"

"तो फिर ऐसे गम की—"

"कल मैं जंग में जा रहा हूँ।"

"जंग में ?"

"हाँ, राजा जसवन्तसिंह शिकस्त खाकर मारवाड़ लौट गये हैं। औरंगज़ेब और मुराद की फौजें आगरे की तरफ बढ़ती आ रही हैं।"

बेगम "दिल" एक क्षण तक अवाक् रह गयी। वह जानती थी कि शाहजहाँ की बीमारी की खबर सुनकर शुजा, औरंगज़ेब और मुराद तख्तो-ताज की हवस में आगरे के लिए चल चुके थे, और स्थिति गम्भीर थी।

"क्या यह जंग रुक नहीं सकती ?"

"नहीं। मुगल शाहजादों का यह पुराना खेल है। अपने रिश्तेदारों के खून से तलवार रँगने के बाद ही तख्तोताज मिलते हैं।" दारा ने कहा।

"तो क्या इसीलिए हुजूर जंग करने जा रहे हैं ?"

"नहीं बेगम, तख्तोताज से बड़ी दौलत मैंने वेदों और उपनिषदों में पायी है। लेकिन मैं यह भूलता नहीं हूँ कि जईफ और लागर अब्बाहुजूर की इस सल्तनत की जिम्मेवारी भी मुझ पर ही है।"

"मैं आपका मतलब नहीं समझ सकी।"

"मेरे भाइयों ने बगावत की है। समझाने पर भी वे अपने-अपने सूबों में लौटने के लिए तैयार नहीं हैं। इसी से मैंने शुजा के खिलाफ अपने बेटे सुलेमानशिकोह को भेजा है, और अब मैं खुद औरंगज़ेब और मुराद के खिलाफ कूच कर रहा हूँ।"

दारा आवेश में कह गये। उन्होंने जब दृष्टि ऊपर की तो देखा कि "रैनादिल" के नयनों में नीर भरा है। वह कुछ बोल नहीं पा रही है। दारा

ने "दिल" का चिबुक छूकर कहा—"तुम रोती हो ? मेरे साथ बेशुमार लश्कर है। इतनी फौज देखकर औरंगज़ेब और मुराद भाग खड़े होंगे। मैं फौरन वापस आ जाऊँगा। तुम फिक्र न करो।"

जब दारा ने कूच किया तो महल की खिड़की से "दिल" ने भरी आँखों से मंगल कामना प्रकट की। दारा के लौटने का इन्तजार वह करती रही। पर दारा कभी न लौटे।

खबर मिली कि समूगढ़ के युद्ध में शाहजादा दारा हार गये।

"दिल" का दिल बैठ गया।

उसके बाद की खबर और भी दुखदायी थी। दारा प्राणरक्षा के लिए सिन्ध की मरूभूमि में भटकने लगे और अन्त में बन्दी कर लिये गये। उन्हें दिल्ली की सड़कों पर घुमाया गया और अन्त में बड़ी बेरहमी से उनकी हत्या कर दी गयी।

हत्या ! लगा, जैसे बेगम के शरीर में किसी ने बर्छे से छेद कर दिया हो। वो दिन भी देखने को मिला जब औरंगज़ेब का भेजा हुआ दारा का कटा सिर बादशाह शाहजहाँ के सामने भेंटस्वरूप रखा गया। बेगम "दिल" दारा के कटे सिर को देखाकर संज्ञाशून्य हो गयी।

शाहजादे की विपत्ति में उनकी पहली बेगम नादिराबानो ने आत्महत्या कर ली थी। "दिल" ने भी निश्चय किया कि वह भी प्राण दे देगी और स्वर्ग में अपने प्रियतम से भेंट करेगी। उसी समय उसे सूचना मिली कि औरंगज़ेब के सैनिक उसे दिल्ली ले जाना चाहते हैं।

"मैं दिल्ली नहीं जाऊँगी।"—उसने कहलाया। लेकिन वह विवश थी। उसे मरने की भी छूट न थी। अन्त में उसने दिल्ली जाने का फैसला कर लिया। और आज वह लाल किले के एक कमरे में, यमुना नदी के पास, कैद है।

Scanned by CamScanner

दरवाजे पर दस्तक पड़ी। "दिल" ने चौंक कर पीछे की ओर देखा। द्वार खोल दिया। एक बांदी ने झुककर सलाम किया।

"शाहंशाह ने आपकी याद की है।" बांदी ने कहा।

"कौन शाहंशाह ?"

"शाहंशाह आलमगीर।"

"बादशाह मुझसे क्यों भेंट करना चाहते हैं ?"

—बाँदी खामोश थी।

"जवाब दो।"

"शाहंशाह आप पर बहुत खुश हैं। वो आपके बालों की खूबसूरती देखना चाहते हैं।"

"बहुत खूब। तुम ठहरो, मैं अभी आई।"

बाँदी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने सोचा कि औरंगज़ेब उससे बड़ा खुश होगा और खूब ईनाम देगा। लेकिन, थोड़ी देर में उसके चेहरे का रंग उड़ गया।

—बेगम "दिल" उसके सामने खड़ी थी। लेकिन उसकी कुन्तलराशि एक बड़ी तश्तरी में रखी थी।

"जाओ बाँदी, बादशाह आलमगीर को मेरी तरफ से यह भेंट दे देना।"

बाँदी के हाथ में तश्तरी देकर वह तत्क्षण भीतर चली गयी।

दूसरे दिन दरवाजे पर फिर दस्तक पड़ी। दिल ने ज्योंहि द्वार खोला, वही बाँदी सामने दिखाई पड़ी।

"तुम फिर आयीं ?"

"हाँ, मुझे फिर भेजा गया।"

"सबब ?"

"बादशाह आपसे भेंट करना चाहते हैं।"—बेगम के दिल में बादशाह के लिए नफरत थी। बादशाह उसके शौहर का कातिल है, जालिम है, खूनी है।

"बादशाह को कह दो कि मैं उनसे नहीं मिल सकती।"

"आखिर क्यों ?"—बाँदी ने पूछा।

"बहस न करो। लौट जाओ।"—बेगम ने कहा।

"हुजूर, बादशाह चाहते हैं कि आप का रुतबा आपको वापस मिले। आपके शौहर अब इस दुनिया में नहीं हैं। अगर आप बादशाह से शादी कर लें तो—"

"खामोश।"—बेगम के नेत्रों में खून उतर आया। क्रोध के कारण शब्द उसके मुँह में बन्द थे।

बाँदी ने साहस बटोर कर कहा—"रंज होने से कोई फायदा नहीं है। जिन्दगी जीने के लिए है। मरहूम शाहजादे दारा की एक बेगम उदयपुरी ने तो नये बादशाह की बात मान ली है। फिर आपको क्या एतराज है ?"

"मैं हिन्दू हूँ, और हिन्दू स्त्री की शादी फिर नहीं होती। शाहजादा दारा ने मुझे नाचीज के लिए सब कुछ किया, मुझे इतना बड़ा रुतबा दिया, मैं एहसानफरामोश नहीं हूँ।"

"लेकिन बादशाह बार-बार आपका नाम लेते हैं।"

"बादशाह सारी दुनिया को ठग रहे हैं। एक तरफ वो अपने को फकीर एलान करते हैं, और दूसरी तरफ सल्तनत के लिए अपने बाप को कैद करते हैं, भाइयों का कत्ल कराते हैं, भाई की बेगमों की अस्मत लूटते हैं।"

"बेगम साहिबा, बेअदबी माफ करें। बादशाह आपको एक दफा देखना चाहते हैं। आपकी खूबसूरती....."

"अगर बादशाह मेरी खूबसूरती को देखना चाहते हैं तो मैं तैयार हूँ। तुम ठहर जाओ।" बेगम अन्दर चली गयी।

बाँदी ने समझा कि मेरा निशाना ठीक बैठा। लेकिन जब फिर उसने सामने देखा तो चीख उठी। यह क्या ? क्या यह वही बेगम है जिस पर

Scanned by CamScanner

शाहज़ादा दारा का दिल कुरबान था ? क्या यह वही "रैना दिल" है जिसको देखने के लिए बादशाह आलमगीर बेचैन है ?

बेगम का समस्त मुखमण्डल रक्त से भरा था। चेहरे पर छुरे के अनेक घाव थे। एक हाथ में रक्तरंजित छुरा था, और दूसरे हाथ में एक तश्तरी थी। तश्तरी में चेहरे से रक्त टप-टप चू रहा था।

"बाँदी, मेरी खूबसूरती इस तश्तरी में है। जाओ, बादशाह को मेरी ओर से भेंट कर दो।"

—काँपते हाथों से बाँदी ने रक्त से भरी तश्तरी ली और कमरे के बाहर चली गई। "दिल" पछाड़ खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी और फफक-फफक कर रोने लगी। थोड़ी देर के बाद वही बाँदी फिर हाजिर हुई। उसने बेगम को उठाया और हाथ में औरंगज़ेब का लिखा एक पुर्जा दिया। लिखा था—अपनी बेअदबी के लिए शर्मिन्दा हूँ और साथ ही माफी का तलबगार भी—औरंगज़ेब।"

छोटे भाई से छल

गुजरात के प्रमुख शहर अहमदाबाद में विद्रोह की तैयारी हो रही थी। सम्राट् शाहजहाँ का सबसे छोटा बेटा मुरादबख्श गुजरात का सूबेदार था। शाहजहाँ की बीमारी की खबर पाते ही उसने अपने आप को बादशाह एलान कर दिया और अब आगरे की ओर कूच करने के लिए तैयार था। उसी समय औरंगज़ेब का एक दूत पत्र लेकर उपस्थित हुआ। पत्र में लिखा था—

"बहादुर शाहजादे मुरादबख्श को मालूम हो कि मुझे खबर मिली है जहर देकर शाहज़ादा दारा ने हमारे पिता की जान ले ली है, राज्य हस्तगत कर लिया है तथा खुद बादशाह बन बैठा है। इसी से शाहज़ादा शुजा भी दारा से बदला लेने के लिए, सिंहासन पर अधिकार करने के लिए, बड़ी फौज के साथ चला था। इसी बात ने मुझे तुम्हारे पास यह खत भेजने को बाध्य

किया है कि मैं तुम्हें बता दूँ कि तुम्हारे सिवा और कोई शाहज़ादा ऐसा योग्य नहीं है जो मुगल-साम्राज्य का सम्राट् बन सके। दारा इस्लाम का शत्रु है। शुजा अली के मत को मानता है, अतः वह भी इस्लामविरोधी हैं। कुरान के प्रति मेरी श्रद्धा ऐसी है कि तुम्हें ही मैं सम्पूर्ण साम्राज्य का अधिपति बनाना चाहता हूँ। सभी लोग जानते हैं कि मैंने संसार को छोड़ दिया है और जीवन के शेष दिन मैं मक्का में रहकर व्यतीत करना चाहता हूँ। मैं सिर्फ तुमसे यही चाहता हूँ कि कुरान की शपथ खाकर तुम इस का उत्तरदायित्व लो कि तुम मेरे परिवार पर दया करोगे और मेरी याद में तुम उन्हें पिता की तरह प्यार करोगे। यदि तुम कुरान की शपथ लेकर ऐसा आश्वासन दो तो मैं तुम्हें अपनी सम्पूर्ण ताकत और सामर्थ्य से दिल्ली के तख्त पर बिठाने का प्रयत्न करूँ। अपने शब्दों पर यकीन दिलाने के लिए मैं तुम्हारे पास एक लाख रुपये भेज रहा हूँ। तुम्हारे आने का इन्तेजार है।"

मुराद इस पत्र को पाकर झूमने लगा। औरंगज़ेब के इस पत्र पर उसका विश्वास पूर्णरूपेण जम गया। उसे लगा कि शाहजहाँ के बाद वह खुद भारत-सम्राट् होने वाला है। मुराद का एक सलाहकार था—शाहबाज़ खाँ। यह औरंगज़ेब की नीयत को समझता था। इसने मुराद को सावधान कर दिया कि वह उसके चक्कर में न पड़े। उसने यह भी राय दी कि मुरादबख्श चुपचाप गुजरात में पड़ा रहे और बगावत की कल्पना भी न करे। लेकिन मुराद का जोश ठण्डा न हुआ। उसने औरंगज़ेब को फौरन उत्तर भेज दिया कि वह अपनी पूरी फौज के साथ उससे मिलेगा और उसकी सारी बातें मान लेगा। उसने बादशाह बनने की अपनी स्वीकृति भी दे दी।

औरंगज़ेब ने मुराद का पत्र पढ़ा तो अपनी सफलता पर प्रसन्न हो उठा। उसकी योजना को समझना कठिन था। माण्डू पहुँचकर औरंगज़ेब मुरादबख्श का इन्तेजार करने लगा। माण्डू के जंगलों और पहाड़ियों के बीच औरंगजेब का फौजी खीमा लगा था। प्रहरी ने मुराद की फौज के आगमन

Scanned by CamScanner

की सूचना दी। कुछ दूरी पर मुराद का खीमा भी लग गया। औरंगज़ेब अपने बेटे सुल्तान मुहम्मद के साथ आगे बढ़ा। "बादशाह" कहकर मुराद को कोर्निश दी। मुराद को औरंगज़ेब की बातों पर जरा भी शक न था। रात में औरंगज़ेब अपने तम्बू में कुरान का पाठ कर रहा था। जंगल से एक भयानक साँप तम्बू में गया और औरंगज़ेब की ओर बढ़ने लगा। औरंगज़ेब शान्त बना देखता रहा। निकट आने पर उसने फुर्ती से अपनी तलवार से वार किया। साँप के दो टुकड़े हो गये। फिर चिल्लाया और लोग आये। इससे स्पष्ट हो जाता है कि औरंगज़ेब कितना सतर्क रहा करता था। औरंगज़ेब और मुराद की सम्मिलित वाहिनी आगरे की तरफ चली।

शाही लश्कर से जमकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में मुराद ने बड़ी बहादुरी दिखाई। औरंगज़ेब ने कहा कि इस विजय का श्रेय मुराद को ही है।

शाहबाज़ बार-बार मुराद को सावधान कर रहा था। लेकिन मुराद को औरंगज़ेब पर अगाध श्रद्धा थी। औरंगजेब खुद मुराद के खीमे में आकर उसका हालचाल पूछा करता और बादशाह कह कर सम्बोधित करता। शाहबाज ने तय किया कि वह औरंगज़ेब की हत्या करके अपने मालिक की जान बचायेगा। औरंगज़ेब जब अपने बेटे सुल्तान मुहम्मद के साथ मुराद के शिविर में आया तो शहबाज ने योजना को काम में लाना चाहा। औरंगज़ेब भाँप गया और बहाने बनाकर शिविर से फौरन निकल गया। शाहबाज सफल न हो सका। अब औरंगज़ेब मुराद के शिविर में खुद न जाकर अपने बेटे को भेजता।

समूगढ़ के युद्ध में सेनापति के विश्वासघात के कारण दारा की पराजय हुई। दारा दिल्ली की तरफ भाग निकला। आगरे में औरंगज़ेब ने शाहजहाँ को नजरबन्द कर लिया। अपने मामा शाइस्ता खाँ को आगरे का सूबेदार नियुक्त कर औरंगज़ब अपने भाई मुराद के साथ दारा की खोज में दिल्ली की तरफ बढ़ा। औरंगज़ेब ने मुराद को कह रखा था कि अब शीघ्र ही

उसका तख्तेनशीं होनेवाला है। इस महोत्सव के लिए औरंगज़ेब ने नये तम्बू, जवाहरात, हाथी, घोड़े आदि की तैयारी का आदेश दे दिया था। रोज़ वह मुराद के पास फल, पुष्प आदि भेजता। नर्तकियों और संगीतज्ञों को भी तैयार रहने का आदेश दे दिया गया।

मथुरा। आगरा और दिल्ली के बीच की यह पुण्यभूमि जहाँ हिन्दुओं के पवित्र मन्दिर हैं। जून का महीना था। "कोली का घाट" नदी के तट पर एक खुला मैदान था—मथुरा शहर से लगभग 6 मील दूर। यही वह स्थान था जहाँ औरंगज़ेब की राह का काँटा दूर होनेवाला था। यह वह स्थान था जहाँ मुरादबख्श की राज्यलिप्सा सदा के लिए दफन होने वाली थी।

औरंगज़ेब ने एलान किया कि इसी स्थान पर मुरादबख्श को भारत-सम्राट् घोषित किया जायेगा। चार दिन वहाँ पड़ाव डालने के बाद 15 जून को औरंगज़ेब ने अपने बेटे सुल्तान मुहम्मद को मुराद के शिविर में भेजा। कहवाया कि ज्योतिषियों के कथनानुसार शुभ दिन निश्चित हो चुका है और मुराद तख्तेनशीं होने के लिए शीघ्र औरंगज़ेब के शिविर में पधारे। शाहबाज स्थिति को ताड़ गया। उसने मुराद को सावधान कर दिया कि वह हर्गिज न जाये। लेकिन मुराद फौरन घोड़े पर सवार होकर औरंगज़ेब के शिविर की ओर चल पड़ा। शहबाज तथा और थोड़े से लोग साथ में हो लिये।

आगे जाने पर इब्राहिम खाँ नामक एक सरदार से भेंट हुई। उसने मुराद के घोड़े की लगाम थाम ली और स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि औरंगज़ेब ने उसे बन्दी करने की योजना बनाई है। शाहबाज ने फिर अपने मालिक को रोका। मुराद वीर था। तलवार हाथ में लेकर उसने कहा—"अज़ मन कसी बहादुर नीस्त" अर्थात् "मेरी तरह कौन बहादुर है?"

मुराद औरंगज़ेब के शिविर में गया। औरंगज़ेब ने बाहर आकर उसका स्वागत किया, आलिंगन किया और स्नेह तथा सम्मान के अनेक शब्द कहे।

Scanned by CamScanner

अन्दर ले जाकर औरंगज़ेब ने मुराद को एक बड़े आसन पर आसीन कराया, अपने रूमाल से मुराद के चेहरे के पास की मक्खियों को हटाया, उसके पसीने तथा गर्द पोछे। लगा कि सचमुच वह सम्राट् के सामने एक विनीत प्रजा है।

तब महफिल लगी। नाचगान हुआ। फूल और गुलाबजल छिड़के गये। तम्बू के बाहर बाजे बज रहे थे। भीतर मुराद मौज की गंगा में डूब रहा था। दो बजे दिन को लोग दस्तरखान पर जुटे। फौजी अफसरान भी इस दावत में शरीक थे। रात भर जश्न मनाने की छूट थी। इस बीच मुराद के साथी भी बाहर निकल गये। मुराद के साथ खाने की मेज़ के पास उसका सिर्फ एक आदमी था—शहबाज़। शराब का दौर चला। औरंगज़ेब के अफसरान ढाल-ढाल कर मुराद को पिलाने लगे। औरंगज़ेब खुद मुराद की मेजों पर तश्तरियाँ ला-लाकर देने लगा। अब औरंगज़ेब ने कहा कि मुराद विश्राम करे तब तक वह ताजपोशी की व्यवस्था करेगा। यह भी कहा कि ज्योतिषिगण जिस समय कहेंगे, वह खुद मुराद को जगाने के लिए जायेगा।

पास के एक कमरे में मुराद को ले आया गया। वहाँ एक सुन्दरी पहले से तैयार थी। शहबाज ने खतरा को समझ लिया था। चुपके से उस औरत को बाहर निकाल दिया। नशे में चूर मुराद शीघ्र सो गया। शहबाज़ खाँ मुराद के पैर के पास बैठा दरवाजे की आहट लेता रहा। थोड़ी देर में औरंगज़ेब दिखाई पड़ा। शरीर पर सादा लिबास था। सिर पर एक टोपी थी। उसने शाहबाज़ को इशारा किया कि वह उससे कुछ जरूरी मशविरा करना चाहता है। शहबाज़ धोखा खा गया। ज्योंहि उसने दरवाजे से सिर बाहर निकाला, औरंगज़ेब के आदमियों ने उसे हाथों में उठा लिया। उसका मुँह बन्द कर दिया और गर्दन दबा कर बिना किसी शब्द के शहबाज़ को वहीं पर ढेर कर दिया।

मुराद सोया था, लेकिन औरंगज़ेब पूरी तरह जगा था। उसने अपने बेटे सुल्तान आज़म को बुलवाया। यह लड़का छै-सात साल का था। एक

हीरा दिखाया। कहा कि यदि वह अपने चाचा (मुराद) की तलवार, बिना उसे जगाये इधर दे जाये तो पुरस्कार में यह हीरा दिया जायेगा। इसमें भी औरंगज़ेब की चाल थी। अगर मुराद की नींद टूट जाती तो इस निर्दोष बालक की हरकत मज़ाक में उड़ा दी जाती।

आज़म ने मुराद की तलवार हटा ली और द्वार पर खड़े औरंगज़ेब को दे दिया। अभी भी मुराद के पास एक कटार थी। औरंगज़ेब ने दूसरे हीरे का प्रलोभन अपने बेटे को दिया और इसी प्रकार कटार भी हटा ली गई। अब मुराद के पास कोई हथियार न था। उसके पास मदद करने वाला भी कोई न था। उस कमरे में वह बेसुध नशे में पड़ा था। औरंगज़ेब ने जिस प्रकार मुराद को अस्त्रहीन किया, उससे स्पष्ट है कि मुराद वीर था और उस दशा में भी लड़ सकता था।

अब इस नाटक की महत्वपूर्ण भूमिका औरंगज़ेब खुद अदा करना चाहता था। उसने हथकड़ी बेड़ी के साथ छै आदमियों को बुलाया। ये सब अन्दर जाकर सोये मुराद के पैरों में बेड़ियाँ डालने लगे। मुराद की नींद टूटी और वह झटक कर हथियार लेने के लिए खड़ा हुआ। लेकिन उसे सफलता न मिली। क्षणमात्र में उसने स्थिति समझ ली। प्रतिवाद करना व्यर्थ समझ कर उसने आत्मसमर्पण कर दिया।

यह सब इतने गुप्तरूप से हुआ कि बाहर के लोगों को कुछ पता न चला। बाहर पहले की तरह बाजे बज रहे थे। लोग आनन्द में डूबे थे।

दो हाथी लाये गये। हौदों पर पर्दे लगे थे। प्रत्येक के साथ चार-चार हजार सैनिक थे। एक पर मुराद बैठाया गया। पर्दे लगे रहने के कारण किसी को पता न चला कि वह किस हाथी पर है। एक दल को आगरे भेजा गया और दूसरे को दिल्ली। देखने वाले लोग देखते रह गये और रात के अन्धेरे में बन्दी मुराद दूर भेज दिया गया।

दिल्ली के निकट पहुँचने पर हौदे पर का पर्दा हटा दिया गया। अभागे

Scanned by CamScanner

शाहजादे को दिल्ली की सड़कों पर घुमाया गया और फिर सलीमगढ़ के दुर्ग में उसे डाल दिया गया। बाद में औरंगज़ेब ने इस भाग्यहीन शाहज़ादे को ग्वालियर के दुर्ग में भिजवा दिया और आदेश दिया कि इसे रोज अफीम का रस पिलाया जाये ताकि तिल-तिल कर उसकी मौत हो।

औरंगज़ेब की इस क्रूर आज्ञा का पालन हुआ। हर महीने औरंगज़ेब मुराद के चित्र मँगा कर खुद देखता और पाता कि अफीम का कोई भी असर मुराद के स्वस्थ शरीर पर नहीं हो रहा है। औरंगज़ेब ने दूसरी चाल चली।

जब मुराद गुजरात का सूबेदार था तो उसने एक व्यक्ति की जान ली थी। औरंगज़ेब ने उस मृत व्यक्ति के एक निकटतम रिश्तेदार के पास कहलाया कि वह अभियोग लाये ताकि इस बहाने मुराद को प्राणदण्ड दिया जाये। लेकिन वह व्यक्ति मुराद की दुर्दशा से खुद इतना द्रवित था कि इस जाल में न फँसा। तब एक दूर के रिश्तेदार को प्रलोभन देकर मुराद के विरुद्ध हत्या का अभियोग लाया गया। काजी को सिखा-पढ़ा कर औरंगज़ेब ने पहले ही तैयार कर लिया था। फैसला दिया गया कि मुराद का सिर काट डाला जाये।

ग्वालियर के दुर्ग में औरंगज़ेब के सैनिक उस आदमी के साथ गये। बेचारे मुराद का सिर काट डाला गया। लेकिन औरंगज़ेब इतने से सन्तुष्ट न था। उसने ऐसा प्रयत्न किया कि इस मक्कारी की कहानी यहीं दब जाये। नतीजा यह हुआ कि जो आदमी मुराद के विरुद्ध अभियोग लाया था, उसे भी साफ कर दिया गया। साथ ही उन सिपाहियों को भी खत्म कर दिया जिन्होंने मुराद का सिर काटा था।

अराकान का शहीद

बंगाल के मुख्य शहर "राजमहल" में बड़ी खलबली मची थी। प्रभात का सूर्य हँस रहा था। लोग इधर उधर भाग रहे थे। पता नहीं कहाँ से एक

भयानक साँप निकला, उसके पीछे दूसरा, फिर तीसरा, फिर चौथा····· बाद में तो उन साँप की जैसे बाढ़-सी आ गई हो। लोग सिर पर पैर रख कर भाग रहे थे। लोग छतों पर चले गये, पेड़ पर चढ़ कर प्रकृति का यह विस्मयपूर्ण नाटक देखने लगे। जिधर देखो, उधर साँप। आश्चर्य तो यह था कि ये सभी साँप पश्चिम से पूर्व की ओर जा रहे थे। कहाँ से आ रहे थे और कहाँ जा रहे थे—यह किसी को पता न था, और भय के मारे यह पता लगाने की किसी में हिम्मत भी न थी। उन साँपों के बीच एक सबसे बड़ा साँप था। उस साँप के सिर पर एक बिल्कुल उजला छोटा-सा साँप बैठा था। ये दोनों साँप सबसे निराले थे। मज़ा यह कि साँपों की इस बारात में किसी व्यक्ति को कोई खतरा न हुआ। सारा दिन यह सिलसिला चला। लगभग चार बजे जब सूर्य पश्चिम की ओर जाने लगा तो धीरे-धीरे साँपों की संख्या घटने लगी।

उस समय शाहजहाँ की ओर से बंगाल का सूबेदार था उनका द्वितीय पुत्र "शुजा शिकोह। शुजा "राजमहल" में ही रहता था। उसने साँपों की यह बारात खुद देखी थी और इसका जिक्र विस्तार से शाहजहाँ के पास अपने पत्र के द्वारा भेजा था। शाहजहाँ भी इस घटना से चकराया। उसने ज्योतिषियों से पूछा। उनलोगों ने कहा कि यह इस बात का संकेत है कि साम्राज्य से बदी विदा ले रही है और सम्राट् दीर्घायु हुए हैं। शाहजहाँ ने चैन की साँस ली।

उधर शहज़ादे शुजा ने भी ज्योतिषियों से पूछा। उनलोगों ने कहा कि साम्राज्य में एक भारी विद्रोह की आँधी उठनेवाली है और उसमें शुजा भारत-साम्राट् होगा। बड़े साँप के सिर पर बैठनेवाला साँप अपने राज्य को छोड़कर जा रहा था। शुजा ज्योतिषियों के इस अर्थ से बड़ा प्रसन्न हुआ। यह भी एक कारण था कि शाहजहाँ की बीमारी की खबर मिलते ही शुजा ने ही सबसे पहले बगावत का झंडा खड़ा किया। चालीस हजार घुड़सवारों तथा अनगिनत पैदल सैनिक और पुर्तगाली तोपचियों के साथ यह आगरे की ओर

Scanned by CamScanner

चल पड़ा। उसने एलान यह किया कि बड़े भाई दारा ने पिता को कैद कर रखा है, और वह पिता को मुक्त कराने जा रहा था। लेकिन उसकी मन्शा किसी से छिपी न थी। शाहजहाँ ने वास्तविक स्थिति का उल्लेख करते हुए शुजा को बंगाल लौटने का आदेश भेजा। लेकिन शुजा बढ़ता आ रहा था।

शाहजहाँ बीमारी के कारण बड़ा कमजोर था। उसने स्थिति पर काबू करनी चाही। दारा के बेटे सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह को एक बड़ी फौज के साथ शुजा के विरुद्ध भेजा। साथ में पठान सेनापति दिलेर खाँ भी था। राजा जयसिंह को आदेश था कि युद्ध की स्थिति न आने दें और किसी प्रकार शुजा को बंगाल लौटा दें। राजा जयसिंह अपनी चेष्टा में विफल रहे। युद्ध हुआ और राजा जयसिंह के रणकौशल के सामने शुजा ठहर न सका। पराजित होकर बंगाल की ओर भाग चला। सुलेमान ने काफी दूर तक शुजा का पीछा किया।

औरंगाबाद में औरंगज़ेब बड़ी बेसब्री से टहल रहा था। उसे सूचना मिली थी कि शुजा बंगाल से आगरे के लिए चल चुका है। वह खुद शुजा के पहले आगरे पहुँचकर अपना झण्डा गाड़ना चाहता था। मुराद को मिला लिया। जसवन्त सिंह को पराजित किया। समूगढ़ के युद्ध में दारा को पराजित किया। जल्दी से आगरे पहुँच कर शाहजहाँ को नज़रबन्द किया और अपने मामा शाइस्ता खाँ को आगरे का सूबेदार निथुक्त कर दारा की खोज में निकल पड़ा। मथुरा के निकट मुरादबख्श को धोखे से कैद कर लिया।

इस बीच उसे खबर मिली कि शुजा फिर नई फौज लेकर आगरे की ओर बढ़ रहा है। औरंगज़ेब को अब यदि किसी से भय था तो शुजा से। वह भूख-प्यास की पर्वाह किये बगैर, बदहवास, शुजा की ओर बढ़ रहा था। फौज पीछे छूट गई थी। सिर्फ पाँच अंगरक्षकों के साथ वह आगे-आगे जा रहा था।

एक घनघोर जंगल से जब वह अपने पाँच अंगरक्षकों के साथ बढ़ रहा था तो अचानक एक बड़ी फौज सामने आ गई। राजा जयसिंह राजपूत सेना के साथ सामने खड़े थे। औरंगज़ेब बड़े संकट में पड़ गया। यदि राजा जयसिंह चाहते तो एक क्षण में औरंगज़ेब की जान ले लेते और भारत का इतिहास बदल देते। लेकिन औरंगज़ेब की धूर्तता ने यहाँ भी बड़ा काम किया।

औरंगज़ेब बड़ी बेसब्री से राजा जयसिंह का नाम लेकर उनकी ओर बढ़ा। उसने कहा—"मैं बड़ी बेचैनी से आपका इन्तेज़ार कर रहा हूँ। मैंने आपके पास खत भेजा था। आपकी तरह तजुर्बेकार और ईमानदार दोस्त के सिवा और कौन मेरी मदद कर सकता है? दारा तो हार गया। अब आपकी सूझ-बूझ से ही मुझे चलना है।" इतना कहकर औरंगज़ेब ने अपने गले का एक बहुमूल्य हार निकाल कर जयसिंह के हाथ पर रख दिया। राजा साहब पर धूर्तता का जादू चल गया। औरंगज़ेब ने कहा "आप सुलेमान शिकोह का पक्ष त्याग कर मेरी मदद करें। मैं आपको दिल्ली का सूबेदार बनाता हूँ और साम्भर का इलाका बतौर दोस्ती के देता हूँ। आप फौरन दिल्ली जाकर काम सम्भाल लें।" औरंगज़ेब ने इस प्रकार राजा जयसिंह को दूर हटाया और खुद शुजा के खिलाफ आगे बढ़ा। इधर राजा जयसिंह ने देखा कि साम्भर से लाखों रुपये का नमक निकलता है। वे फौरन दिल्ली की तरफ चले।

खजवा के मैदान में शुजा और औरंगज़ेब की सेनाओं का मुकाबला हुआ। शुजा की सेना तगड़ी पड़ती थी। इससे औरंगज़ेब बड़ा चिंतित था। इसी बीच औरंगज़ेब का दाहिना हाथ मीर जुमला आ पहुँचा। औरंगज़ेब का साहस बढ़ा।

शुजा का प्रधान सेनापति तथा सलाहकार था अलीवर्दी खाँ। जब औरंगज़ेब की सभी हिकमत हार जाती थी तो वह धूर्तता पर उतर आता

Scanned by CamScanner

था और उसमें वह बराबर सफल होता था। यहाँ भी उसने वैसा ही किया। अलीवर्दी खाँ के पास उसने मीरजुमला से लिखवा कर पत्र भेजा। पत्र में लिखा था—"अलीवर्दी खाँ अगर आज के दिन तुम मुझे हिन्दुस्तान का बादशाह बनाना चाहते हो तो तुम्हें जंग में किसी तरह शुजा को हाथी से नीचे उतरवाना होगा। मैं वादा करता हूँ कि तुम्हें और तुम्हारे परिवार को जो भी मेरे पक्ष में होंगे, पुरस्कृत करूँगा। मुझे पूरी उम्मीद है कि तुम मुझे मायूस न करोगे—औरंगज़ेब"।

युद्ध में औरंगज़ेब जिस हाथी पर बैठा था, तीर लगने से उसके महावत की मौत हो गई। औरंगज़ेब बड़े संकट में पड़ गया। वह सैन्य-संचालन कर रहा था, अब महावत का काम भी हाथ में लेना पड़ा अन्यथा हाथी काबू से बाहर हो जाता। औरंगज़ेब पर शुजा के तीरों की वर्षा हो रही थी। औरंगज़ेब ने हौदे से एक पैर बाहर निकाला। वह प्राणरक्षा के लिए हाथी से कूद कर घोड़े पर आना चाहता था। उसी समय मीरजुमला का स्वर सुनाई पड़ा—"खबरदार।" औरंगज़ेब चेत गया। उसे तुरत याद हो आया कि हाथी से उतरने के ही कारण समूगढ़ के युद्ध में दारा की हार हुई थी। मीरजुमला के पत्र से शुजा का सेनापति अलीवर्दी तो पहले ही खरीदा जा चुका था।

औरंगज़ेब ने फैसला कर लिया कि वह हाथी पर से नहीं उतरेगा। वह चुपचाप बैठा रहा। धीरे-धीरे शुजा का हाथी औरंगज़ेब की ओर बढ़ रहा था। अलीवर्दी ने शुजा से कहा—"बस औरंगज़ेब हजूर के पास ही है। उसे फौरन कैद करना होगा। कहीं वह भाग न जाये। हाथी पर आप वहाँ देर से पहुँचेंगे। घोड़े पर सवार होकर फौरन उधर बढ़े"—शुजा ने अलीवर्दी की गद्दारी न समझी। फौरन घोड़े पर सवार हो गया। इधर अजीवर्दी ने सबसे पूछना शुरू किया कि हाथी पर शुजा थे—कहाँ गये। शुजा की फौज के लोगों ने समझा कि शाहजादा मारा गया। शुजा की फौज भागने

लगी। अब शुजा ने अपनी भूल समझी। लेकिन अब क्या होता? शुजा खुद भी भाग खड़ा हुआ। औरंगज़ेब की फौज पीछा करने लगी। खजवा के युद्ध में शुजा का भग्यसूर्य सदा के लिए अस्त हो गया। बाद में शुजा ने अलीवर्दी को कैद कर लिया और अपने हाथ से उसकी हत्या कर दी।

औरंगज़ेब ने अपने सबसे विश्वासी सेनापति मीरजुमला को शुजा के पीछे लगा दिया। मीरजुमला के अधीनस्थ अपने बड़े बेटे सुल्तान मुहम्मद को भेज दिया। औरंगज़ेब शक्की था। उसे किसी पर विश्वास न था। इसीसे उसने दोनों को भेजा।

इलाहाबाद, बनारस, पटना होते हुए शुजा मुंगेर पहुँचा। यहाँ उसने सुरक्षा की पूरी तैयारी की। इधर मीरजुमला और सुल्तान मुहम्मद "राज-म ल" की तरफ बढ़े। शुजा "राजमहल" खोना नहीं चाहता था। वह वहाँ पहले पहुँच गया। छै दिनों तक "राजमहल" में युद्ध चला। शुजा ने मुकाबला व्यर्थ समझ कर ढाका की राह पकड़ी। लेकिन मीरजुमला ने वहाँ भी उसका पीछा किया।

अब शुजा मुग़ल-साम्राज्य की पूर्वी सीमा पर खड़ा था। उसके बाद अराकान का राज्य था। शुजा ने अपने बेटे को आराकान नरेश के पास भेज कर आश्रय की भीख माँगी और कहा कि वहाँ से वह फारस या मक्का चला जायेगा। अराकान के जंगली राजा ने शुजा को अपने राज्य में घुसने की स्वीकृति दे दी।

अराकान में प्रवेश करने के पूर्व शुजा के पास काफी जवाहरात थे। नदी पार करने के वक्त बड़ी गड़बड़ी फैली। जवाहरातों से भरी एक नाव लेकर एक नाविक गायब हो गया। एक अन्य नाव में शुजा के हरम की ढाई सौ सुन्दरियाँ थीं। यह नाव बीच नदी में शुजा ने डुबवा दी।

अराकान के राजा ने शुजा की बड़ी आवभगत की। एक बार राजा ने शुजा को खाने पर बुलाया। शुजा ने अपने बेटे को भेजा। अराकान का

Scanned by CamScanner

राजा बड़े स्वाद से पात्र में रखे भैंस के रक्त को पी रहा था। शुजा के पुत्र ने नाक बन्द कर ली। अराकान के राजा ने शुजा से अपने बेटे के लिए उसकी लड़की माँगी। स्थिति खराब होती गई। अराकान का राजा शुजा को तंग करने लगा। शुजा ने तय किया कि अचानक आक्रमण करके वह क्यों न अराकान का राज्य ले ले। पता नहीं, कैसे इस बात की खबर अराकान के राजा को लग गई। वह क्रोध से जल उठा। उसने ही शुजा पर हमला कर दिया।

शुजा का बेटा बन्दी हो गया। शुजा जंगलों में भाग गया। लेकिन वहाँ भी अराकान के जंगली सैनिकों ने उसका पीछा किया और उसे टुकड़े-टुकड़े कर दिये। इस प्रकार शाहजहाँ के दूसरे बेटे शुजा शिकोह का दर्दनाक अन्त हुआ। शुजा के बेटे की भी हत्या कर दी गई।

डच व्यापारियों के दारा शुजा के अन्त की कहानी औरंगज़ेब के कानों तक पहुँची। उसने हर तरह से इसकी छानबीन कराई। औरंगज़ेब ने भारत के प्रमुख शहरों में शुजा की स्मृति में दान की व्यवस्था कराई। प्रश्न उठता है कि क्या औरंगज़ेब उदार हो चला था? नहीं, इसमें भी रहस्य छिपा था कि साम्राज्य भर के लोग जान जायें कि शुजा अब जिन्दा न रहा, और सिंहासन का एकमात्र अधिकारी माना जाये औरंगज़ेब को।

बेटों पर अविश्वास

औरंगज़ेब ने मरने के समय एक वसीयत छोड़ी थी। उसकी ग्यारहवीं संख्या में लिखा था कि—"अपने बेटों पर कभी विश्वास न करो, अपने जीवनकाल में उनसे दुलार का व्यवहार न करो। यदि बादशाह शाहजहाँ दारा को प्यार न देते तो मामला इतना दुखदायी न होता। हमेशा याद रखो कि राजा के शब्द शुष्क होते हैं"—औरंगज़ेब ने अपने समस्त जीवनकाल में इस सिद्धांत का पालन किया। उसने अपने बेटों का कभी विश्वास न किया। उन्हें बराबर त्रस्त रखा। वे सब औरंगज़ेब के सामने आने में काँपते

थे। उन शाहज़ादों का अनुमान गलत न था। औरंगज़ेब ने उन्हें मौका पाते ही सचमुच धर दबोचा।

औरंगज़ेब के पांच बेटे थे। उनमें प्रत्येक अपने को बाप का उत्तराधिकारी मानता था। उन्हें यह मालूम था कि मुगल-परम्परा के अनुसार उत्तराधिकार का निर्णय तलवार से होगा, बड़े-छोटे होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए उन शाहज़ादों को जब भी मौका मिला, अपनी वीरता का प्रदर्शन करने में न चूके। साथ ही अपना दल भी मजबूत बनाया।

मुहम्मद सुल्तान बादशाह का सबसे बड़ा बेटा था। जब औरंगजेब उत्तराधिकार के लिए अपने भाइयों से लड़ रहा था तो मुहम्मद सुल्तान ने अपने बाप की पग-पग पर मदद की थी। रण में अपना जौहर भी दिखाया था। शाहजहाँ को बन्दी बनाने के लिए औरंजेब ने इसे ही भेजा था। मुहम्मद सुल्तान ने अपने बाप की आज्ञा से अपने दादा को कैद किया। शाहजहाँ ने इस युवक को कहा कि मैं तुम्हें हिन्दुस्तान का बादशाह एलान करता हूँ, तुम औरंगज़ेब का पक्ष छोड़ दो।" लेकिन पिता की आज्ञा के सामने उस युवक ने बादशाहत को भी लात मार दी।

औरंगज़ेब बादशाह हो गया, लेकिन उसे मुहम्मद सुल्तान से खतरा महसूस हुआ। शुजा के विरुद्ध जब मीरजुमला को रवाना किया गया तो मुहम्मद सुल्तान को उसकी मातहत में भेजा गया। मुहम्मद सुल्तान को यह बड़ा बुरा लगा। शिविर में ही दोनों में मतभेद पैदा हो गया। मुहम्मद सुल्तान भाग कर शुजा से मिल गया। कहा जाता है कि उसने शुजा की एक लड़की से शादी कर ली। शुजा बराबर हार रहा था। औरंगज़ेब ने एक चाल चली। सुल्तान के नाम एक चिट्ठी शुजा के शिविर में भेजी गई। उसमें लिखा गया था कि बादशाह के कहने पर सुल्तान ने शुजा की सेना में प्रवेश पाकर बड़ा अच्छा काम किया है। जानबूझ कर यह पत्र शुजा के हाथों में पहुँचाया गया। शुजा ने शाहज़ादे को औरंगज़ेब का भेदिया समझा। सुल्तान

Scanned by CamScanner

बेचारे की स्थिति बड़ी खराब हो गई। निदान शुजा का पक्ष छोड़ कर वह फिर मीरजुमला की फौज में आ गया। मीरजुमला ने उसका बड़ा स्वागत किया। उधर औरंगज़ेब ने मीरजुमला को गुप्त आदेश भेजा कि मोहम्मद सुल्तान को कड़े पहरे में, पालकी में बैठाकर, दिल्ली भेजा जाये। मुहम्मद सुल्तान अब कैदी था। राह में उसने कई बार पालकी से कूदने की कोशिश की, पर व्यर्थ। औरंगज़ेब ने रास्ते में ही आदेश भिजवाया कि शाहज़ादे को हथकड़ी-बेड़ी में रखा जाये। फिर वह ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया गया जहाँ उसे अफीम का पानी पिलाया जाने लगा ताकि उसका मस्तिष्क बेकार हो जाये।

जब मराठों से युद्ध चलने लगा तो औरंगज़ेब को फिर मुहम्मद सुल्तान की याद आई। मोहम्मद सुल्तान को ग्वालियर से सलीमगढ़ दुर्ग में लाया गया। उसे थोड़ी आजादी दी गई, औरंगज़ेब उसे स्वयं मस्जिद में ले गया। एक बार औरंगज़ेब ने उसके पास एक फल भेजवाया। मुहम्मद सुल्तान ने फल काटने के लिए चाकू माँगा। पर पहरेदार ने चाकू देने से इन्कार कर दिया। इस पर क्रोध में शाहज़ादे ने फल को फेंक दिया। बढ़ा-चढ़ा कर यह खबर औरंगज़ेब को दी गई। औरंगज़ेब की प्रतिहिंसा जाग पड़ी और उसने आदेश दिया कि शाहज़ादे को विष देकर समाप्त कर दिया जाये। सन्ध्या में औरंगज़ेब को अभागे शाहज़ादे की मृत्यु की सूचना दी गई। उस समय उस शाहज़ादे की उम्र 38 वर्ष की थी।

औरंगज़ेब का द्वितीय पुत्र था मुअज्जम। इसे बाद में शाहआलम की उपाधि औरंगज़ेब ने ही दी। शाहआलम ने गोलकुन्डा-नरेश से, बादशाह की स्वीकृति लेकर, सन्धि कर ली। बादशाह ने अपने वचन के विरुद्ध गोलकुन्डा पर फिर आक्रमण किया। शाहआलम ने बादशाह से कहा कि ऐसा करना उचित न था। औरंगज़ेब को इस शाहज़ादे से भी खतरा दिखाई पड़ा। औरंगज़ेब ने शाहआलम से अपना अफसोस प्रकट किया और उसे उपहार देने का आयोजन किया।

बादशाह के सामने शाहआलम सम्मान पा के लिए प्रसन्नता-पूर्वक उपस्थित हुआ। औरंगज़ेब ने कहा कि बगल के कमरे में वज़ीर तुमसे कुछ मशविरा करेंगे। शाहआलम ज्योंहि उस कमरे में उपस्थित हुआ, वज़ीर ने कहा कि बादशाह का हुक्म है कि आप अस्त्र परित्याग करें। शाहआलम स्थिति को समझ गया। उसने अपनी तलवार जमीन पर फेंक दी।

इधर औरंगज़ेब ने शाहआलम के बीस-वर्षीय पुत्र मुइज़्द्दीन को बुलाया और कहा कि बगल के कमरे में शाहआलम उसका इन्तेजार कर रहा है। मुइज़ुद्दीन ज्योंहि अन्दर गया, उसका भी वही हाल हुआ। इसी प्रकार शाहआलम के सभी बेटे गुप्तरूप से बन्दी कर लिये गये।

सात साल तक शाहआलम कैद में रहा। उसका सारा जोश ठण्ढा हो गया। इस बीच बादशाह के तीसरे बेटे "अकबर" ने बगावत कर दी। औरंगज़ेब ने शाहआलम को मुक्त किया और अकबर के पीछे लगा दिया। शाह-आलम भारत की सीमा पर तैनात रहा कि अकबर फारस से आक्रमण न कर दे। शाहआलम के बड़े बेटे मुइज़ुद्दीन को भी उसी रोज़ बंगाल रवाना किया। बाप-बेटे को इतनी दूर पर डाल दिया ताकि वे कभी मिल न सकें। यही शाहआलम औरंगज़ेब के बाद "प्रथम बहादुरशाह" के नाम से गद्दी पर बैठा।

औरंगज़ेब का तीसरा बेटा "आज़मशाह" था। यह अपने बाप का दुलारा था। शाहआलम जब कारागार में भेजा गया तो आज़म ने अपना सिक्का जमाया, लेकिन बादशाह इससे भी सतर्क रहता था। उसने आज़म को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया। आज़म ने लिखा कि गुजरात में वह बीमार रहता है, कमजोर हो गया है और अपने पिता की सेवा करने के लिए दरबार में ही रहना चाहता है। धूर्त औरंगज़ेब आज़म के मनोभावों को समझता था। उसने लिखा कि यह मेरे लिए क्रूरता होगी कि मैं तुम्हें इस कमजोरी में दरबार तक आने का कष्ट दूँ। आज़म चुप हो गया। आज़म

Scanned by CamScanner

ने अनेक युद्धों में भाग लिया। इस शाहज़ादे का इतना सौभाग्य अवश्य रहा कि इसे कारागार में न जाना पड़ा, लेकिन एक बार जनानखाने के एक निरीक्षक से झगड़ा करने के कारण औरंगज़ेब ने इसे पचास हजार रुपये जुर्माने से चुकाने की सजा दी।

एक बार मराठों ने सूरत के निकट लूटपाट मचाई। जब आज़मशाह को सूचना दी गई तो उसने कहा कि वह इलाका मेरी फौजदारी में नहीं है, इसलिए मुझे कोई सरोकार नहीं है। जब औरंगज़ेब को यह बात मालूम हुई तो उसने आज़म का ओहदा पाँच हजार कम कर दिया और फटकारते हुए लिखा कि क्या यही शाहज़ादे की योग्यता है।

औरंगज़ेब का चौथा पुत्र अकबर था। इसे राजपूतों से लड़ने के लिए भेजा गया था। इसने तख्तोताज के लिए विद्रोह किया। तीस हजार राजपूत इसके साथ थे। दुर्गादास राठौर भी अकबर की मदद कर रहा था। औरंगज़ेब के लिए यह बड़ा खतरनाक समय था। उसे अकबर से भय न था, लेकिन राजपूतों से भय था। जिस दिन युद्ध होने को था, उस दिन औरंगज़ेब ने पुरानी चाल चली। अकबर के नाम उसने एक पत्र भेजा। लिखा—"बेटे, तुम बड़ा अच्छा काम कर रहे हो। राजपूतों को ऐसी स्थिति में रखना कि शाही फौज उनका अधिकाधिक सफ़ाया कर सके।" औरंगज़ेब ने व्यवस्था ऐसी की कि पत्र राजपूतों के हाथ में पड़े। उस पत्र को पढ़कर सभी राजपूत अकबर के विरुद्ध हो गये। अकबर ने लाख कसमें खाईं, पर व्यर्थ। अपने बच्चों को छोड़कर अकबर भाग निकला। 26 जनवरी 1681 ई० को शाहज़ादा शाहआलम, सम्राट के आदेश से, अकबर के पीछे-पीछे चला। शाहआलम को आदेश था कि वह अकबर को जिन्दा या मुर्दा पकड़ लाये।

अकबर मराठों से मिल गया। लेकिन औरंगज़ेब की धूर्तता ने वहाँ भी उसे टिकने नहीं दिया। अकबर भारत छोड़ कर फारस चला गया।

फारस के बादशाह ने उसका बड़ा स्वागत किया। फारस-भारत सीमा पर अकबर अब अपने बाप की मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा। औरंगज़ेब ने जब यह सुना तो हँस पड़ा। कहा—देखना है कि खुदा के घर कौन पहले जाता है।—शायद खुदा ने औरंगज़ेब की ही बात सुनी। अकबर की मौत पहले हुई। जब यह ख़बर औरंगज़ेब को दी गई तो उसने कहा—हिन्दुस्तान के अमन का दुश्मन चल बसा। अच्छा हुआ।

बादशाह का पाँचवाँ पुत्र "कामबख्श" था। इसकी माँ उदयपुरी बेगम थी। जिसे बादशाह सबसे अधिक प्यार करता था। कहा जाता है कि यह उदयपुरी बेगम शाहज़ादा दारा की पत्नी थी और अपने पति के मरने के बाद उसने औरंगज़ेब की बेगम होना स्वीकार किया था।

बेगम पर अत्यधिक अनुराग रखने के कारण कामबख्श अपने बाप का दुलारा था। लेकिन यह बिगड़ा हुआ शाहज़ादा था और इसमें अहंकार कूट-कूट कर भरा था। इसे मराठों से युद्ध करने के लिए भेजा गया। "जिन्जी" में मुगलों का शिविर था। कामबख़्श के साथ दो जबर्दस्त सेनापति थे। इनके रहने से शाहज़ादे कामबख्श की चलती न थी। ये दोनों भी अपने तर्जुबे के आगे नवयुवक शाहज़ादा को कुछ लगाते न थे। कामबख्श की नज़र भी मुगल तख्तोताज पर थी और यह मुगल-सम्राट् होने के सपने देखा करता था। इसी चक्कर में उसे आज़म से भी झगड़ा हुआ।

कामबख्श के चापलूस मित्रों ने राय दी कि अगर मराठों से मदद मिल जाये तो दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करना आसान हो जायेगा। बस, कामबख्श ने मराठा सरदार राजाराम से पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। तय हुआ कि रातोंरात कामबख्श भाग कर मराठा शिविर में आ जाये। कामबख्श ने पूरी तैयारी कर ली। लेकिन ये सारी बातें मुगल-सेनापति जुलफ़िकार खाँ को मालूम हो गयीं। कामबख्श ज्योंहि शिविर से बाहर निकला, सिपहसालार के ईशारे पर कैद कर लिया गया। सेनापति

Scanned by CamScanner

ने शाहज़ादे का काफी अपमान किया। फिर औरंगज़ेब के आदेश पर कैदी कामबख्श को दिल्ली भेज दिया गया।

औरंगजेब ने कामबख्श को कारागार में डाल दिया। लेकिन उदयपुरी बेगम की मिन्नत के बाद कामबख्श को छोड़ दिया गया। उद्दण्ड शाहज़ादे का दिमाग कुछ ठण्डा हो गया।

जब औरंगज़ेब की मृत्यु दक्षिण में हुई तो शाहज़ादों के बीच जंग छिड़ी और अन्त में मुअज्ज़म "बहादुरशाह प्रथम" के नाम से मुगल-सम्राट् हुआ।

गुलाब और कांटा

दक्षिण भारत के बुढ़ानपुर नामक शहर में शाहजादे ओरंगज़ेब के स्वागत की तैयारियाँ हो रही थीं। सूबेदार का महल सज रहा था। बादशाह शाहजहाँ का प्रतिनिधि और दक्षिण का शासक शाहज़ादा औरंगाबाद जा रहा था। रास्ते में बुढ़ानपुर पड़ता था जहाँ उसकी मौसी (मुमताज महल की बहन) रहती थी। बुढ़ानपुर का सूबेदार उसका पति था। मौसी की बड़ी तमन्ना थी कि औरंगज़ेब से उसकी भेंट हो। इसीसे औरंगज़ेब रुक कर अपनी मौसी से भेंट करना चाहता था।

बुढ़ानपुर का सूबेदार घमण्डी प्रकृति का था और शाहजहाँ को भी कुछ नहीं समझता था। फिर औरंगज़ेब का महत्व यह क्यों देता? यह औरंगज़ेब से मिलने भी नहीं गया।

औरंगज़ेब तो घर का आदमी ठहरा। इसलिए उसकी मौसी ने हरम की महिलाओं के लिए पर्दे की व्यवस्था न की। शाहजादे ने भी अपने पद के अनुकूल मर्यादा पाने की बात दिमाग में नहीं रखी। शाहजादा औरंगजेब महल के मुख्य द्वार से घुसा। वह खामोश था। साथ में उसने किसी अंगरक्षक को भी नहीं लिया था। वह चुपचाप चला जा रहा था। एक मधुर संगीत-ध्वनि उसके कानों में पड़ी। किसी स्त्री का कोमल स्वर था। शाहजादे ने

आँखें ऊपर उठायीं तो फिर देखता ही रह गया। एक अति सुन्दर नवयौवना सामने के पेड़ के नीचे खड़ी थी। उसका दाहिना हाथ वृक्ष की एक डाल पर टिका था। औरंगज़ेब ने उसकी यह मनमोहिनी मुद्रा देखी तो देखता रहा—खड़ा रहा। दूसरे क्षण वह होश-हवास खोकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। नवयौवना दौड़ी, उसने शोर मचाया, हरम की अन्य स्त्रियाँ दौड़ीं, मौसी भी आई। औरंगज़ेब की यह हालत देखकर वह रोने लगी।

औरंगज़ेब महल के एक पलंग पर पड़ा था—बेहोश। मौसी छाती पीट रही थी। तीन-चार घड़ी के बाद औरंगज़ेब होश में आया। मौसी ने पूछा—बेटे, क्या तुम्हें बेहोशी की बीमारी है?—औरंगज़ेब की आँखें खुली थीं, लेकिन जुबान बन्द थी। वह किसी प्रश्न का भी उत्तर नहीं दे रहा था। मौसी की चिन्ता और भी बढ़ी। वह क्या करे? आधीरात का समय था। औरंगज़ेब के पलंग के पास मौसी खड़ी खुदा का नाम ले रही थी, मनौतियाँ कर रही थी,। अचानक उसके कान में आवाज पड़ी—

"मौसी"

यह औरंगजेब की कराहती आवाज थी। मौसी की प्रसन्नता का कोई ठिकाना न था। उसने अल्लाह को शुक्र किया। औरंगज़ेब से पूछा कि क्या बेहोशी की बीमारी उसे पहले से है।

'नहीं मौसी, मैं आज पहली बार बेहोश हुआ हूँ।'—औरंगज़ेब ने कहा।

'पहली बार?'

'हाँ।'

'सबब?'

'न पूछो।'

अब मौसी और भी व्यग्र हो उठी। उसके काफी समझाने पर और यह आश्वासन दिलाने पर कि उसके रोग का उचित उपचार वह करेगी, औरंगज़ेब ने सारा माजरा बयान कर दिया।

Scanned by CamScanner

मौसी के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई। अपने कानों पर विश्वास न हुआ। उसने बताया कि जिस सुन्दरी को देख कर वह अपनी सुध-बुध खो बैठा है, वह ताप्ती नदी के तट पर की एक जगह जैनाबाद की रहनेवाली "हीराबाई" है और उसे उसके पति अर्थात् बुढ़ानपुर के सूबेदार ने मुग्ध होकर अपने महल में रख लिया है। किसी भी शर्त पर बुढ़ानपुर का सूबेदार इस सुन्दरी को महल से बाहर जाने न देगा। इतना ही नहीं, यदि वह जान जायेगा तो हीराबाई तथा मौसी की हत्या भी कर देगा।

सुबह हुई। शाहज़ादा औरंगज़ेब अपनी छावनी में लौट आया। उसने कुछ भी खाया-पीया नहीं। मुर्शिदकुली खाँ दीवान ने आकर शाहजादे की उदासी का कारण पूछा। शाहजादे ने उसे सब कुछ बता दिया। मुर्शिद-कुली शाहजादे की धार्मिक प्रवृति पर जी जान से कुर्बान था, और अपने मालिक को खुश करने के लिए कुछ भी करने को तैयार था। वह इसके लिए भी तैयार था कि यदि इस काम में उसे सूबेदार बुढ़ानपुर की हत्या भी करनी पड़े तो वह करेगा।

मुर्शिदकुली खाँ ने सूबेदार से सारी बातें बताकर हीराबाई की माँग की। सूबेदार ने कहा कि इसका उत्तर मैं शाहजादे की मौसी, जो मेरी बेगम है, उसके मार्फत भेजूँगा। क्रोध में भरा सूबेदार अपनी बेगम के पास आया। कहा कि तुम फौरन औरंगज़ेब के पास जाओ और कहो कि क्या वह अपनी बेगम छतरबाई मुझे हीराबाई के बदले देने के लिए तैयार है?

बेगम चुपचाप जमीन की ओर देखने लगी। शर्त्त घोर अपमानजनक थी, और वह ऐसी शर्त्त लेकर औरंगज़ेब के पास नहीं जाना चाहती थी। उसने अपने पति से स्पष्ट कह दिया। सूबेदार आग हो गया। उसकी आँखों में खून उतर आया। उसने कहा—बेगम, 'अगर जान की खैरियत चाहती हो तो तुम्हें औरंगज़ब के पास जाकर मेरी शर्त्त सुनानी पड़ेगी।'

पालकी में बैठकर बेगम औरंगज़ेब के शिविर की तरफ चली। औरंगज़ेब ने शर्त्त सुनी। वह उछल पड़ा। बोला—शर्त्त बड़ी आसान है। छतरबाई देने के लिए मैं तैयार हूँ।

बुढ़ानपुर के सूबेदार ने जब यह सुना तो क्षण भर के लिए चुप रह गया। अब उसके पास कोई बहाना न था। निदान उसने हीराबाई को औरंगज़ेब के पास भेजने का फैसला कर लिया।

औरंगज़ेब बड़े शुष्क हृदय का व्यक्ति था। क्रूरता और छलकपट उसमें भरी थी। वह धर्म के मामले में कट्टर था। हीराबाई औरंगज़ेब के शुष्क जीवन में रस भरने आई। औरंगज़ेब हीराबाई पर मुग्ध होकर सब कुछ भूल बैठा। ये औरंगज़ेब के जवानी के दिन थे। यों वह छै बच्चों का पिता हो चुका था। उसके हरम में अनेक बेगमें थीं। लेकिन जैसे उसकी वासना बाँध तोड़ कर आगे बढ़ चली। जीवन के कुछ वर्षों तक वह हीराबाई के प्रभाव में रहा। वेनिस के यात्री मनूची ने औरंगज़ेब की इस प्रणयलीला का वर्णन इन शब्दों में किया है—'अपने हरम की एक नर्तकी के प्रति औरंगज़ेब का बड़ा आकर्षण था। उसके प्रेम के कारण वह अपनी धार्मिक प्रार्थनाओं को तथा अन्य काम को भूलने लगा। अपने समय को संगीत और नृत्य में व्यतीत करता।'

दूसरा मत यह है कि हीराबाई ने औरंगज़ेब के अनुराग की परीक्षा लेने के ध्येय से एक पात्र में मदिरा भेंट की। औरंगज़ेब उसे लेकर पीने ही वाला था कि हीराबाई ने पात्र लेकर फेंक दिया और कहा कि वह औरंगज़ेब के प्रेम की परीक्षा ले रही थी, उसका उद्देश्य यह नहीं था कि वह उसके मुख को मदिरा से अशुद्ध करे।

कुछ भी हो, औरंगज़ेब की यह प्रणयकथा शाहजहाँ और दारा तक पहुँची। दोनों नाराज हुए। लेकिन अचानक इस प्रेम के पौधे पर उल्कापात हो गया। भरी जवानी में हीराबाई की मृत्यु हो गई। औरंगज़ेब को भारी

Scanned by CamScanner

ठेस लगी। फिर तो उसे संगीत और नृत्य से जीवन भर के लिए विराग हो गया।

बाद में औरंगज़ेब कहा करता था कि खुदा ने हीराबाई को मुझसे छिन कर अच्छा ही किया, वरना न जाने मैं क्या-क्या करता? ज़ैनाबादी बेगम (हीराबाई) की कब्र औरंगाबाद में है।

औरंगज़ेब के हरम में कई बेगमें थीं। शहनवाज़ खाँ की लड़की दिलरास बानू बेगम से औरंगज़ेब की तीन सन्तानें थी—जेबुन्निसा (प्रसिद्ध कवयित्री), आजम और अकबर। दिलरास बानू की मृत्यु 8 अक्टूबर 1657 को हो गई। उस समय अकबर सिर्फ एक महीने का था। औरंगज़ेब की दूसरी बेगम थी नवाबबाई। इससे मुहम्मद सुल्तान और मुअज्ज़म का जन्म हुआ था। एक अन्य बेगम थी औरंगाबादी। इसकी मृत्यु प्लेग से 1688 ई० में हुई।

औरंगज़ेब के शासनकाल में जिस बेगम का सबसे अधिक प्रभाव उस पर था, वह थी उदयपुरी बेगम। कहा जाता है कि यह पहले दारा की बेगम थी। उसकी मृत्यु के बाद उसने औरंगज़ेब से शादी की। उदयपुरी के बारे में यह भ्रान्त धारणा है कि वह मेवाड़ के घराने की थी। कुछ लोग उसे जार्जियन जाति के कहते हैं, और कुछ उसे कश्मीरी मानते हैं।

उदयपुरी बुरी तरह मदिरा पान करती थी। एक बार औरंगज़ेब अपनी हरम की सभी बेगमों के साथ कश्मीर में ठहरा हुआ था। अन्य बेगमें उदयपुरी का सम्राट् पर अत्यधिक प्रभाव देखकर जलती थीं। एक दिन जब उदयपुरी नशे में अपने कमरे में पड़ी थीं तो सभी बेगमों ने एक साथ सम्राट् से मिलने की अनुमति चाही। औरंगज़ेब बड़ा प्रसन्न हुआ। एक साथ सभी बेगमें अन्दर आयीं। उदयपुरी उनमें न थी। औरंगज़ेब ने उसे भी बुलवा भेजा। दासी ने आकर सूचित किया कि उदयपुरी बेगम की तबियत खराब है।

सभी बेगमें एक साथ अट्टहास कर उठीं। औरंगज़ेब को माजरा समझ में नहीं आया। दासी फिर गई। लेकिन उदयपुरी नहीं आई। बेगमें फिर

अट्टहास कर उठीं। औरंगज़ेब स्वयं उदयपुरी के कमरे की तरफ चला।

उदयपुरी पलंग पर नशे में पड़ी थी। वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। केश छितराये थे और वह होश में न थी। औरंगज़ेब ने बेगम के ललाट पर अपना हाथ रखा। बेगम ने समझा कि कोई दासी है। बड़बड़ा कर हुक्म दिया कि और शराब लाओ। औरंगज़ेब कमरे से बाहर चला आया और पहरेदारों पर नाराज होने लगा कि क्यों शराब महल के भीतर लाई गई। फिर भी उदयपुरी पर सम्राट् का अनुराग कभी कम न हुआ।

छै मार्च 1667 ई० को उदयपुरी के गर्भ से कामबख्श का जन्म हुआ। यह औरंगज़ेब का पाँचवा और सबसे छोटा पुत्र था।

कामबख्श "बिगड़ा शाहजादा" था। औरंगज़ेब का दुलार इसे मिला था। लेकिन यह कुछ हासिल न कर सका। एक दफा इस शाहजादे के एक मित्र ने कुछ अपराध किया। शाही सिपाही उसे गिरफ्तार करना चाहते थे। वह मुजरिम कामबख्श के पास चला गया। कामबख्श उसके हाथ में हाथ डाले, माफी दिलाने औरंगज़ेब के रूबरू हाजिर हुआ। बादशाह शान्त भाव से शाहजादे का यह नाटक देखता रहा। फिर मधुर सम्भाषण से दोनों मित्रों को अलग किया। मुजरिम को गिरफ्तार करके सैनिकगण अलग ले गये। औरंगज़ेब के ईशारे पर कामबख्श भी गिरफ्तार कर लिया गया, और कारागार में डाल दिया गया। जब यह खबर उदयपुरी बेगम को मिली तो उसने बादशाह से अपने बेटे के लिए बड़ी मिन्नत की। कामबख्श को छोड़ दिया गया, लेकिन उसे आदेश दिया गया कि वह बिना अनुमति लिये अब बादशाह के आगे न आया करे।

उदयपुरी बादशाह के साथ मेवाड़ युद्ध में भी गई थी। वहाँ औरंगज़ेब की बुरी तरह हार हुई थी। मेवाड़ के राणा राजसिंह ने बेगम को कैद कर लिया। लेकिन अपनी मर्यादा का पालन करते हुए राणा ने बाइज्जत बेगम को बादशाह के पास भेज दिया।

Scanned by CamScanner

बादशाह के अन्तिम दिन मराठों से युद्ध करते हुए दक्षिण में बीते। वहीं उसकी मृत्यु हुई। मृत्यु के समय उदयपुरी बेगम उसके साथ थी।

अन्तिम वसीयत

दक्षिण भारत में कृष्णा नदी के तट पर एक स्थान था देवापुर। वहाँ बड़ी चहल-पहल थी। भारत-सम्राट् औरंगज़ेब ने अपनी विराट् सेना के विश्राम के लिए इस स्थान को चुना था। जहाँ तक नजर जाती, शाही सेना के तम्बू ही तम्बू नजर आते। उस समय दक्षिण में मराठों का जोर बहुत बढ़ गया था। अपने जीवन के अन्तिम 26 वर्षों को औरंगज़ेब ने मराठों की शक्ति नष्ट करने में ही बिताया, लेकिन कुछ न कर सका। मराठे हर जगह मुगलों को तंग करने लगे। अब तो मराटा फौज उसी शान से निकला करती जिस शान से शाही फौज। पहले मराठों के पास तलवार और तीर-भाले थे। लेकिन अब उनके पास वैसे सभी हथियार थे जो शाही सेना के पास थे। औरंगज़ेब ने जब देखा कि शाही फौज बुरी तरह हार रही है और मराठे बराबर बढ़ रहे हैं तो अन्त में वह स्वयं मैदान में उतरा। लगभग नब्बे वर्ष की आयु में सेना का संचालन करने आया। औरंगज़ेब की वीरता और कूटनीति की प्रशंसा उसके दुश्मन भी करते थे।

देवपुर के शाही शिविर में अचानक परेशानी की एक लहर छू गई। सम्राट् औरंगज़ेब बीमार था। सारी सेना के सामने शाहजहाँ के जमाने का वह चित्र सजीव हो उठा जब बुढ़ापे में वह बीमार पड़ा था और दारा, शुजा, औरंगज़ेब और मुराद तख्त के लिए जान की बाजी लगा रहे थे। औरंगज़ेब भी उस घटना को भूला न था और किसी भी कीमत पर अपने जीवनकाल में ऐसा अवसर न आने देना चाहता था।

शाही शिविर में एक मामूली मजदूर से लेकर बड़े-से-बड़े सेनापति तक घबरा उठे। औरंगज़ेब उनकी परेशानी के कारण को जानता था। बीमारी

की हालत में भी वह लोगों को अपने खीमे की खिड़की से दर्शन देता ताकि लोग उसे जीवित मानते रहें। दरबार करना उसने स्थगित कर दिया था, लेकिन वह सरकारी कागजों को स्वयं देखता और उन पर आदेश लिखता। परिश्रम की अधिकता और बुढ़ापा के कारण शरीर जर्जर होता गया। कभी-कभी वह बेहोश हो जाता, और उस समय स्थिति विचित्र हो जाती।

दस-बारह दिनों के बाद बादशाह के स्वास्थ्य में कुछ सुधार आया। लेकिन उसकी कमजोरी न गई। वह दरबार भी करने लगा।

23 अक्टूबर 1705। बादशाह ने आदेश दिया कि देवापुर से शाही खेमा हटा कर अहमदनगर ले जाया जाये। 23 वर्ष पहले जहाँ से उसने दक्षिण-विजय का काम शुरू किया था, वहीं वह जीवन के अन्तिम दिनों में आया और मृत्युपर्यन्त रहा।

14 जनवरी 1706 को शाही सेना ने अहमदनगर में पड़ाव डाला। इस समय औरंगज़ेब के तीन बेटे जीवित थे। मुअज्जम (शाहआलम) उत्तर-पश्चिम सीमा के पास भेजा गया था। शेष दो बेटे आजम और कामबख्श औरंगज़ेब के कुछ निकट पड़ते थे और स्थिति का अध्ययन कर रहे थे। लेकिन उनके लाख निवेदन करने पर भी निकट आने का उन्हें आदेश नहीं दे रहा था।

औरंगज़ेब के सामने निराशा और असफलता थी। चारों तरफ उसे शत्रु नजर आ रहे थे। इतनी लम्बी अवधि तक उसने शासन किया था, लेकिन चारों तरफ विद्रोह और अशान्ति थी। उसके पुराने सेनापतिगण एक-एक कर खुदा के प्यारे हो चुके थे। उसका घरेलू जीवन भी सुखी न था। उसके साथ सिर्फ उसकी अविवाहिता लेकिन अधेड़ उम्र की बेटी जीनतउन्निसा तथा उदयपुरी बेगम थी। दारा की बेटी और आजम की पत्नी जहाँज़ेबबानो पर उसका अगाध स्नेह था। जहाँज़ेब की मृत्यु 1705 में गुजरात में हो गई। दो बेटे मुहम्मद सुल्तान और अकबर भी इस दुनिया से कूच कर चुके थे।

Scanned by CamScanner

उसकी बेटी कवयित्री जेबुन्निसा 1702 ई० में मर चुकी थी। बेटी मेहरून्निसा और उसका पति (मुरादबख्श का बेटा) इज़िदबख्श मर चुके थे। शाहजहाँ के बेटे-बेटियों में इस समय तक सिर्फ औरंगज़ेब और उसकी बहन गौहरआरा बेगम जीवित थे। 1706 ई० में गौहरआरा की भी मृत्यु हो गई। जीवन के अन्तिम दिनों में एक के बाद एक पारिवारिक लोगों की मृत्यु से भी औरंगज़ेब को बड़ी ठेस लगी।

मराठों के चुने हुए सेनापतियों ने बादशाह की इस अवस्था से लाभ उठाने के उद्देश्य से मुगल सल्तनत को एक और धक्का दिया। मराठों की बड़ी फौज मुगल फौज से सिर्फ चार मील की दूरी पर आ गई। लेकिन मुगल फौज ने उसे दूर तक खदेड़ दिया। लेकिन मराठों का उपद्रव कम न हुआ।

आज़म और कामबख्श एक दूसरे के जानी दुश्मन हो गये थे। आजम मजबूत पड़ता था। औरंगज़ेब की अनुभवी नजर से इनकी रक्तपिपासा छिपी न थी। उसने कामबख्श को बीजापुर का सूबेदार नियुक्त करके 9 फरवरी को रवाना किया। चार दिनों के बाद आजम को भी मालवा का शासक बनाकर भेज दिया। आजम चतुर था। वह जानता था कि बादशाह की हालत अच्छी नहीं है और किसी भी वक्त उसकी मौत हो सकती है। इसलिए कूच करने के बाद भी उसने अपनी गति काफी धीमी रखी। आजम का अनुमान गलत नहीं था।

औरंगज़ेब को तेज ज्वर आया, लेकिन वह स्वास्थ्य से युद्ध करता रहा। पाँचों वक्त रोज नमाज पढ़ता रहा। इन्हीं दिनों उसने कामबख्श और आजम के नाम दो दर्दनाक पत्र लिखे।

शुक्रवार, 20 फरवरी 1707। भारतीय इतिहास की यह एक महत्त्वपूर्ण तिथि है। औरंगज़ेब ने सुबह उठ कर रोज की तरह इबादत की और सबीह पर उँगलियाँ फेरने लगा। धीरे-धीरे बेहोशी छाने लगी। साँस की गति

बदल गई। आठ बजते-बजते उसकी मृत्यु हो गई। उस समय भी उसके ओठ चल रहे थे और उँगुलियाँ माले पर टिकी थीं। उसके जीवन की परम अभिलाषा थी कि उसकी मृत्यु शुक्रवार को ही हो, और खुदा ने उसकी यह बात मान ली।

आजम अभी मुश्किल से 50 मील गया होगा कि बाप की मौत का समाचार उसे मिला। वह बिजली की गति से वापस लौट पड़ा। 22 फरवरी 1707 ई० को वह शाही फौज में वापस आ गया। औरंगज़ेब ने अपने जीवनकाल में ही आदेश दे रखा था कि उसकी कब्र शानदार न हो। दौलताबाद के निकट खुल्दाबाद में सन्त, शेख जईनुद्दीन की कब्र के पास, बादशाह को दफन किया गया।

प्रसिद्ध इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार ने अपनी पुस्तक में औरंगज़ेब के उन पत्रों का उल्लेख किया है जो उसने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में लिखे थे। आजम के नाम लिखे पत्र के कुछ अंश इस प्रकार थे :—

"तुम्हें शान्ति लाभ हो। बुढ़ापा आ गया है और कमजोरी बढ़ गई है तथा ताकत ने जवाब दे दिया है। मुझे नहीं मालूम है कि मैं कौन हूँ और मैं क्या करता रहा हूँ। पुण्यकार्य के दिनों के अतिरिक्त शेष समय मेरे लिए दुख छोड़ गया है। मैंने शासन भले प्रकार से नहीं किया, न प्रजा को सुख दे सका। मूल्यवान जीवन यों ही बीत गया। मालिक मेरे घर में है। लेकिन मेरी अँधी आँखें उसे देख नहीं पायीं।

"मेरा ज्वर समाप्त हो गया है। मेरा बेटा कामबख्श जो बीजापुर गया है, मेरा प्रिय है। लेकिन तुम उससे अधिक दुलारे हो। शाहआलम तुम लोगों से बहुत दूर है। पोता मुहम्मद अजीज (अजीमुद्दीन) बंगाल से हिन्दुस्तान के निकट है। मैं अपने साथ इस दुनिया में कुछ भी नहीं लाया, और अब अपने पाप के फल साथ लेकर जा रहा हूँ। पता नहीं मुझे कौन सी सजा मिलेगी। यों मुझे उसकी कृपा और दया पाने की पूरी उम्मीद है,

Scanned by CamScanner

लेकिन अपने कर्मों के कारण चिन्ता मेरा पीछा नहीं छोड़ती। मेरे पोते बहादुर (बीदरबख्त) से मेरी दुआ कह दोगे। कूच करने के समय मैं उसे देख नहीं रहा हूँ, भेंट करने की इच्छा पूरी न हुई। यद्यपि बेगम बहुत दुखी है, लेकिन दिलों का मालिक तो खुदा है। अदूरदर्शिता से निराशा ही मिलती है। विदा ! विदा ! विदा !"

दूसरा पत्र कामबख्श के नाम था। उसके कुछ अंश इस प्रकार थे :—

"मेरे बेटे, मेरे जिगर ! मैं अपने साथ अपने किये गये पाप तथा दी गई सजा के फल साथ लिये जा रहा हूँ। मैं जहाँ तक नजर दौड़ाता हूँ, मेरे सामने इस कारवाँ के संचालक खुदा के सिवा और कोई दिखाई नहीं पड़ता। फौज तथा साथियों की चिन्ता से मेरा मन दुखी हो रहा है। मेरे हाथ-पैर काम नहीं करते। जो साँस टूट रही है, उसके लौटने की कोई आशा नहीं है। ऐसी दशा में प्रार्थना करने के सिवा और क्या चारा है ? तुम्हारी माँ उदयपुरी बेगम ने मेरी बीमारी में सेवा की है, और वह मेरे साथ ही इस दुनिया से जाना चाहती है। मैं तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को खुदा के भरोसे छोड़ता हूँ। मैं तुमसे विदा लेता हुँ।"

कहा जाता है कि औरंगज़ेब ने अपने हाथ से लिखकर एक वसीयत भी रख छोड़ी थी जो उसके मरने के बाद उसके तकिये के नीचे से मिली। उसमें उसने लिखा था कि चाहे जिस बेटे को भी राज्य मिले, वह कामबख्श को तंग न करे अगर कामबख्श बीजापुर और हैदराबाद की रियासतों से सन्तुष्ट रह जाये। औरंगजेब ने वसीयत में तीन बेटों के बीच राज्य बाँट देने का भी जिक्र किया था ताकि हत्या और रक्तपात न हो। उसने लिखा कि जो तख्त पाये उसे आगरा और दिल्ली में एक दिया जाये। आगरा लेने वाले शाहजादे को चार सूबे—आगरा, मालवा, गुजरात और अजमेर और दक्षिण के खानदेश, बरार, औरंगाबाद और बीदर दिये जायें। दिल्ली लेने वाले को दिल्ली, पंजाब, काबुल, मुल्तान, कश्मीर, बंगाल,

उड़ीसा, बिहार, इलाहाबाद और अवध दिये जायें। फिर उसने क्रमानुसार कुछ और भी हिदायतें लिख छोड़ीं। उनमें कुछ इस प्रकार हैं :—"जो टोपियाँ मैंने सी थीं उनके चार रुपये दो आने माहलदार आइया बेड़ा के पास हैं। उस रकम को लेकर असहाय लोगों के बीच खर्च करो। कुरान नकल करने से तीन सौ पाँच रुपये जो मुझे मिले, वे मेरे अपने खर्च के लिए मेरे पास हैं। जिस दिन मैं मरूँ, उस दिन फकीरों में यह रकम बाँटी जाये। मेरे दफन करने के लिए आवश्यक चीजें आजम के आदमियों से माँग ली जायें क्योंकि वही सबसे नजदीक है और उसी पर मेरे दफन करने का उत्तर-दायित्व है। इस पथिक को दफन करने के समय सिर नंगा रखो क्योंकि कोई भी पापी जो खाली सिर उस बड़े बादशाह खुदा के पास जाता है, उसे जरूर दया मिलती है। कफन को मोटे उजले 'गज्जी' कपड़े से ढाँक दोगे। जहाँ तक सम्भव हो राजा को चाहिए कि वह एक जगह टिका न रहे। अपने बेटों का यकीन न करो, अपने जीवनकाल में उनसे दुलार का व्यवहार न करो। यदि सम्राट् शाहजहाँ दारा को ऐसा समझते तो मामला इतना खराब न होता। याद रखो—"राजा के शब्द शुष्क होते हैं। शासन की सफलता समाचार मिलने पर निर्भर करती है। एक क्षण का भी विलम्ब कई साल तक के कष्ट का कारण हो सकता है। शिवाजी मेरी लापरवाही से भाग गया और उसका नतीजा मुझे आज तक भुगतना पड़ा।"

इस प्रकार हम पाते हैं कि औरंगज़ेब में कुछ ऐसे गुण भी थे जो भारत के बहुत कम शासकों में मिल पाते हैं। एक तरफ वह कर्मठ, योग्य सेनापति, वीर सैनिक, चतुर शासक, खुदा में विश्वास रखनेवाला, कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी था। दूसरी ओर वह घोर शक्की, धर्मान्ध बेटे को भी बेटा न मानने वाला, स्नेहहीन तथा क्रूर था। यदि ये अवगुण उसमें न होते तो शायद उसकी टक्कर का सफल सम्राट् भारत के इतिहास में कोई भी नहीं माना जाता।

●

Scanned by CamScanner

जन्म 1928 ई० । पालि और बौद्ध साहित्य में एम० ए० । नालन्दा में रह कर बौद्ध साहित्य का अध्ययन । इतिहास और रंगमंच में विशेष रुचि । हिन्दी में रंग-मंचीय नाटकों का अभाव देखकर नाटक-लेखन और अभिनय की ओर प्रवृत्त। 1952 में 'मगध कलाकार' (मगध आर्टिस्ट्स) नाट्य संस्था की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य है ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पौराणिक नाटकों का मंचन । 'मीरकासिम' पर उत्तरप्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत । अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त नव नालन्दा महाविहार, नालन्दा में कई वर्षों तक पालि-त्रिपिटक-सम्पादन से सम्बद्ध । इतिहास और बौद्ध साहित्य से सम्बन्धित हिन्दी और अंगरेजी में अनेक लेख प्रकाशित । लगभग तीस पुस्तकें प्रकाशित । आकाशवाणी, भारत सरकार में केन्द्र निदेशक के रूप में सेवा की । रंगमंच और रेडियो के सफल लेखक, निर्देशक और कलाकार के रूप में बहुचर्चित ।

Scanned by CamScanner